प्रथम संस्करण

प्रह्लाद सभा

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान
गहवर वन, बरसाना, मथुरा
उत्तर प्रदेश २८१ ४०५
भारतवर्ष

प्रथम संस्करण

प्रकाशित १७ अगस्त २०१४

श्री कृष्ण जन्माष्टमी, भाद्रपद, कृष्ण पक्ष, २०७१ विक्रमी सम्वत्

सर्वाधिकार सुरक्षित २०१४ – श्री मान मंदिर सेवा संस्थान

Copyright© 2014 – Shri Maan Mandir Sewa Sansthan

http://www.maanmandir.org

http://www.brajdhamseVa.org

ms@maanmandir.org

ISBN 978819280731

ISBN 978-81-928073-1-7

9 788192 807317 >

अंतर्वस्तु

अंतर्वस्तु i
प्राक्कथन 1
तुलसीदास जी 12
अब लौं नसानी अब न नसैहौं 12
काहे ते हरि मोहिं बिसारो 12
बिस्वास एक हरि-नामको 13
कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो 14
जाके प्रिय न राम बैदेही 15
ऐसी कौन प्रभु की रीति 15
रघुबर रावरि यहै बड़ाई 16
जो पै राम-चरन-रति होती 17
जो मोहि राम लागते मीठे 17
मन पछितैहै अवसर बीते 18
जो पै लगन राम सों नाहीं 19
मेरो मन हरि जू! हठ न तजै 19
यह बिनती रघुबीर गुसाईं 20
तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी 21
मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं 21
गोकुल प्रीति नित नई जानि 22
कबीर दास जी 23
पढ़ो रे भाई ! राम गोविन्द हरी 23
बीत गए दिन भजन बिना रे 23
मुखड़ा क्या देखै दरपन में 24
मोको कहाँ ढूँढ़े रे बन्दे 24
कौन ठगवा-नगरिया लूटल हो 25
हरि जननी मैं बालक तोरा 25
नैहरवा हमका न भावै 26
पाड़े भली कथा कहि जानें 26
जनम तेरो बातों ही बीत गयो 27
माया महा ठगिनी हम जानी 28
हम न मरैं मरिहैं संसारा 28
रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार 29
कुछ लेना न देना मगन रहना 29
प्रेमनिधि हित मुहम्मद बने 30
साधो जग कामिनि ऐसी रे 30
मोरा श्याम निकस गयो मैं न लड़ी थी 31
चेत करो बाबा बिलैया मारै मटकी 32
तू तो राम सुमर जग लड़वा दे 32
रहना नहिं देस बिराना है 33
नामदेव जी 34
विनती सुन जगदीस हमारी 34
हीन है जाति मेरी जादवराई 34
उठि भाई नामदेव परे ह्वै जाइ 35
ये आये मेरे लम्बक नाथ 35
लोग परोसी पूछैं रे नामा 36
राम तजि और जानूं हौं न 36
आये मेरे अंधेरे घर के मदनराय 37
नरसी जी 38
कबीर थारो लागे छे बाप 38
चरणदास जी 40
भक्ति बिना मानुष तन खोवै 40
जिन्है हरि भगति पियारी हो 40
मीरा जी 42
गली तो चारों बंद हुई 42
हे री मैं तो दरद दिवानी 42
आली री मेरे नैणां 43
कोई कहियो रे प्रभु आवन की 43
मैं जाण्यों नहिं 44
थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ 44
आवो मन मोहना जी 45
तुम्हरे कारण सब सुख छोड्या 45
बंसीवारा आज्यो म्हारे देस 46
म्हारे घर आओ प्रीतम प्यारा 46
या मोहन के मैं रुप लुभानी 47
पग घुँघरु बाँध मीरा नाची रे 47
हरि मेरे जीवन प्राण अधार 48
बसो मेरे नैनन में नंदलाल 48
जागो बंशी बारे ललना जागो मेरे प्यारे 48
स्याम म्हाने चाकर राखो जी 49
नहिं भावै थारो देसड़ 50
श्री गिरिधर आगे नाचूंगी 50
मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ 51
तेरो कोई नही रोकनहार 51
राणा जी मैं गोविन्द के गुण गाणा 52
राणा जी मैं तो गोबिन्द का गुण गास्यां 52
तुम बिन मेरी कौन खबर ले 53
आली म्हाने लागे वृंदावन नीको 53
या ब्रज में कछु देख्यो री टोना 54

तू मत बरजै माई री 54
प्यारे दरसन दीज्यौ आय 55
कान्हा तेरी जोहत रह गइ बाट 56
तोसो लाग्यो नेह रे प्यारे 56
मै बिरहिणी बैठी जागूं 57
सोवत ही पलका में मैं 57
किसने सिखाया श्याम तुम्हें 58
राणा जी मोहि यह बदनामी लागै मीठी 58
मैं तो थारे दामन लागी जी गोपाल 59
करमन की गति न्यारी 59
दरस बिन दूखण लागे नैन 60
मीरा थारो कांई लागै गोपाल 60
मेरे तो गिरिधर गोपाल 61
सांवरे सों प्रीति करत ही 61
मैंने हरि सूं कीनी यारी 62
मन रे परसि हरि के चरण 62
जब से मोहि नंदनंदन 63
न मैं पूजा गौर ज्या जी 64
माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल 65
राणा जी जहर दीयौ हम जाणी 66
कोई कछू कहे गिरधर सों मेरो मन लागा 66
कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत 67
पल काटो सही इन नैनन के 67
कभी म्हाँरी गली आव रे 68
चालां वाही देस प्रीतम पावां 68
छांड़ो लंगर मोरी बहियाँ गहो न 69
जावा दे जावा दे जोगी किसका मीत 69
नहिं ऐसो जनम बारम्बार 69
नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात 70
नैना लोभी रे बहुरि 71
पतियाँ मैं कैसे लिखूँ 71
बरजी मैं काहू की 72
मैं तो म्हारा रमैया 72
भज मन चरण कमल अविनाशी 73
मीरा लागो रंग हरि 73
मैं तो सांवरे के रंग राची 74
मीरा हरि मन मानी 75
मैं अपनो मन हरि सूं जोरयो 75
म्हारे नैणां आगे रहीजो 76
रमैया बिण नींद न आवै 77
मैं तो तेरी शरण परी रे रामा 78
हेली सुरत सुहागिनी नार 78
आली सांवरे की दृष्टि 78
मेरे प्रीतम प्यारे राम कूं 79
मेरे मन राम नाम बसी 79
मेरो मन लागो हरि जू सूँ 80
मैं हरि बिन क्यूं 81
ऐसी लगन लगाय कहां तू जासी 81
म्हारे जनम मरण रा साथी 82
छिन-छिन में याद आवे रे 82
श्याम पिया मोरि रंग दै चुनरिया 83
साइयां रे तुम बिन नींद 83
हरि तुम हरो जन की भीर 84
सजन सुधि ज्यूं जाणि 86
अब तो निभाया बनेगी 87
सूरदास जी 88
प्रीति करी काहू सुख न लह्यो 88
नेह न होइ पुरानो रे अलि 88
हरि हौं सब पतितनि कौ राजा 89
हरि रस तब ही तो कछु पइहै 90
सुने री मैंने निरबल के बल राम 91
जब जब दीननि कठिन परी 91
गोविन्द सौ पति पाइ, कहँ मन अनत लगावै 92
पढ़ौ भाइ राम मुकुंद मुरारि 93
चरण-कमल बंदौ हरि-राइ 94
प्रभु मैं पीछौं लियौ तुम्हारौ 94
मेरी सुधि लीजौ हे ब्रजराज 94
रे मन गोबिंद के ह्वै रहियै 95
अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल 95
अचंभौ इन लोगनि को आवै 96
अब वे विपदा हू न रहीं 97
आछौ गात अकारथ गार्‌यो 97
इत-उत देखत जनम गयौ 98
इहिं बिधि कहा घटैगो तेरौ 98
करी गोपाल की सब होइ 99
काया हरि कैं काम न आई 99
को को न तर्‌यो हरि-नाम लिऐं 100
कौन सुने यह बात हमारी 100
क्यौं तू गोबिंद नाम बिसारौ 101
जाको हरि अंगीकार कियौ 101
जाको मनमोहन अंग करै 102
जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिं 104
जैसैं राखहु तैसें रहौं 104
जे घट अन्तर हरि सुमिरै 105
जो सुख होत गुपालहि गाये 106
जौ हम भले बुरे तौ तेरे 106
तुम कब मोसौ पतित उधार्‌यो 107
तुम तजि और कौन पै जाउँ 107
तुम प्रभु मोसों बहुत करी 108
नाथ सकौ तौ मोहि उधारौ 109
नीकैं गाइ गुपालहि मन रे 109
प्रभु मेरे गुन अवगुन न बिचारौ 110
बड़ी है राम नाम की ओट 111
भक्त सकामी हू जो होइ 111
भजहु न मेरे स्याम मुरारी 112
मो सम कौन कुटिल खल कामी 113
हरि बिनु मीत न कोउ तेरे 113
रे सठ बिनु गोबिंद सुख नाहीं 114
रे मन मूरख जनम गँवायौ 114
सरन गए को को न उबार्‌यो 115
सोइ रसना जो हरि-गुन गावै 115
हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ 116
हरि बिनु आपनौ को संसार 117
अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी 117

हरि सौं मीत न देख्यौ कोई 118
कृपा श्री लालन जू की चहिए 119
हृदय की कबहुँ न जरनि घटी 119
जगत में जीवत ही कौ नातौ 120
रे मन छाँड़ि विषय कौ रँचिबौ 120
कहत हैं आगैं जपिहैं राम 121
हमारे निर्धन के धन राम 122
भजन बिनु कूकर सूकर जैसो 122
जसोदा हरि पालने झुलावै 123
नागरीदास जी 124
प्यारी तेरो भलो बनो बरसानो 124
तलहटी बरसाने की रहिये 124
मलूकदास जी 126
गरब न कीजै बावरे हरि गरब प्रहारी 126
दीनबन्धु दीनानाथ, मेरी ओर हेरिये 127
कृष्णदास जी 128
ब्रज में रतन राधिका गोरी 128
कुम्भनदास जी 130
भगत को कहा सीकरी काम 130
आनि हरि पाये हो नीके 131
कितेक दिन ह्वै जु गये बिनु देखे 133
परमानन्ददास जी 136
माई री ! मेरो माधव सौं मन मान्यौं 136
चतुर्भुजदास जी 137
श्रीगोवर्द्धन वासी सांवरे लाल 137
दादू दयाल जी 139
जाग रे सब रैन बिहानी 139
बाबा महाराज जी 140
राधे किशोरी दया करो 140

प्राक्कथन

भारतीय मनीषा ने सदा से ही अध्यात्म शिक्षा को चरित्र का सबसे प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण माध्यम माना है। आज के इस कलह व कलुष से व्याप्त भौतिकवादी युग में जबकि धर्महीनता को ही धर्म निरपेक्षता की संज्ञा देने के प्रयास किये जा रहे हैं, अध्यात्म शिक्षा की आवश्यकता और भी अधिक बलवती हो जाती है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी मानवीय मूल्यों के प्रस्फुटन के लिए अध्यात्म शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारा है।

शिक्षा के गिरते हुए स्तर और उसके बढ़ते हुए व्यापारीकरण पर अंकुश लगाने की दृष्टि से श्री मानमंदिर गुरुकुल का उद्भव गहवरवन बरसाना के विरक्त संत श्री रमेश बाबा महाराज जी की प्रेरणा से हुआ। ब्रजवासी बालकों को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व अध्यात्मिक आयामों को समेटे एक समग्र शिक्षा प्राप्त हो ऐसा इस गुरुकुल का लक्ष्य है।

श्री प्रह्लाद जी ने कहा हैं – कौमार अवस्था से ही भक्ति करनी चाहिये क्योंकि मनुष्य जीवन अति दुर्लभ हैं।

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

(भा. ७/६/१)

इसलिए इन नन्हें-मुन्हें बालकों में भक्ति व चरित्र का स्फुटन हो इस हेतु से प्रह्लाद सभा की संकल्पना की गई। प्रतिदिन प्रार्थना सभा में ब्रज के मूर्धन्य संतों मीराबाई, सूरदास आदि के सुन्दर पदों का गायन होता है। प्रत्येक विद्यार्थी को पचासों सुन्दर पद कंठस्थ हो चुके हैं। विद्यार्थियों को न केवल पद कण्ठ कराए जाते हैं बल्कि उनमें निहित आर्ष भावों को भी समझाया जाता है।

प्रह्लाद सभा का यह अभिनव प्रयोग सफल रहा है।

जिन परिवारों के बच्चे श्री मानमंदिर के रासेश्वरी विद्या मन्दिर में पढ़ते हैं, उनमें भी भक्ति एवं सदाचार के संस्कारों का प्रस्फुटन हुआ है।

प्रह्लाद सभा में गाये जाने वाले पदों के मुद्रित संकलन की आवश्यकता का बहुत दिनों से अनुभव किया जा रहा था। सभी बच्चे पदों को लिख भी नहीं पाते थे। कई विद्यालयों ने इस प्रकार की सभाएँ प्रारम्भ करने का मनोरथ भी जताया है। मुद्रित संकलन के अभाव में यह संभव नहीं हो पा रहा था।

जब श्री रासेश्वरी विद्या मंदिर के विद्यार्थी बाबा महाराज के जन्मदिवस पर उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करने गए तो बाबाश्री ने सभी को भेंट में प्रह्लाद सभा में गाये जाने वाले पदों का मुद्रित संकलन देने की अनुशंसा की।

आशा है कि यह संकलन लाभप्रद सिद्ध होगा। इस पुस्तक के माध्यम से कई विद्यालय प्रह्लाद सभा प्रारम्भ कर सकते हैं।

महापुरुषों के पद

श्री रमेश बाबा जी महाराज द्वारा विगत षष्टि वर्षों से सतत गह्वर वन में त्रैकालिक संकीर्तन अनवरत गति से ब्रजवासियों तथा विश्व के अनगिनत प्राणियों में भक्ति का संचार कर रहा है। श्री बाबा महाराज ने महापुरुषों के पदों का सरल भाषा में निरूपण, संकीर्तन में अपने गायन द्वारा इस तरह किया है जैसे उन महापुरुषों की अंतर्गति स्वयं बाबा के सामने प्रकट हो गयी हो । महापुरुषों के इन पदों में छुपे हुये भाव, ज्ञान, रहस्य एवं सिद्धांतो का प्रकटीकरण श्री बाबा महाराज के गाये पदों में प्राप्त होता है।

आज के वैष्णव समाज में साम्प्रदायिकता के विष ने इन महापुरुषों की वाणी को गौण कर दिया है। अनन्यता के धोखे में जब कोई यह कह कर कि हम “मीरा या कबीर” के पदों के गायन की अनुमति अपने सम्प्रदाय में नहीं देते हैं – एक महान अपराध के भागीदार बनते हैं।

व्यास जी को ध्यान में युगल सरकार के लीला दर्शन सतत् होते थे परन्तु जब यह विचार मन में आया कि “वृन्दावन रस कबीर दास जी नहीं जान पायें” – मात्र इस से ही सूक्ष्म भक्तापराध के कारण युगल सरकार की छवि तुरंत अन्तर्धान हो गई।

श्री हित हरिवंश जी के आदेशानुसार इस अपराध की क्षमाप्राप्ति की याचना हेतु व्यास जी ने कबीर दास जी की स्तुति में इस पद का गान किया –

कलि में सांचो भक्त कबीर ।
जबते हरि चरणन रति उपजी, तब ते बुनयो न चीर ॥
दियो लेत न जांचै कबहूँ, ऐसो मन को धीर ।
जोगी, जती, तपी, सन्यासी, मिटी ना मन की पीर ॥
पाँच तत्त्व ते जन्म न पायो, काल न ग्रसो शरीर ।
'व्यास' भक्त को खेत जुलाहों, हरि करुणामय नीर ॥

व्यास जी ने देखा कि कबीर दास जी यमुना जी से प्रकट हुए और उनके पीछे-पीछे प्रभु आ रहे हैं और ठाकुर जी ने कबीर के यश में गाया –

मन ऐसा निरमल भया जैसे गंगा नीर ।
पीछे-पीछे हरि फिरैं कहत कबीर-कबीर ॥

ठाकुर जी भक्त का भजन करते हैं। कबीर दास जी ने प्रभु को प्रतिउत्तर दिया –

कबिरा-कबिरा क्यूं कहें, जा जमुना के तीर ।
एक गोपी के प्रेम में बह गये कोटि कबीर ॥

इस अद्भुत लीला को देखकर व्यास जी का मन तृप्त हुआ एवं इसके उपरान्त ही युगल छवि फिर से व्यास जी के ध्यान में प्रकट हुई।

प्रायः संस्कृतभाषाभिमान में ज्ञानीजन महापुरुषों के पद जो संस्कृत में नहीं हैं – का अपमान या हेयदृष्टि कर महत् अपराध कर बैठते हैं। तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' की रचना संस्कृत में प्रारम्भ की परन्तु हनुमान जी प्रतिदिन उस हस्त लिखित प्रति को चुरा लेते थे एवं हनुमान जी की आज्ञानुसार ही तुलसीदास जी ने रामचरितमानस की रचना लोक भाषा में की।

महापुरुषों के पद श्रुतियों, पुराणों, उपनिषद् आदि के सूत्रों से महत्व में कम नहीं हैं एवं वस्तुतः भक्ति के रहस्य तथा सिद्धान्त इन पदों में पूर्णतया निहित हैं परन्तु उनकी कृपा द्वारा ही सर्वग्राह्य हो सकते हैं। लेश पठनमात्र से इन पदों से रस प्राप्ति प्रायः असंभव है – अतः जनलाभ के लिये बाबा श्री द्वारा इस पुस्तक में उल्लेखित महापुरुषों के पदों का गायन आप इस वैश्विक प्रौद्योगिकी स्थल (website) पर सुन सकते हैं।

http://www.maanmandir.org/prahaladsabha

भौतिकतावाद में व्यवसायिक गायकों द्वारा गाये हुए महापुरुषों के पद सुर एवं संगीत में उच्च कोटि के हो सकते हैं परन्तु उनका मनोरथ सांसारिक संगीत द्वारा धनोपार्जन करना होता है अतः यह संगीत हृदयग्रंथि भेदन में असंभव है। यही कारण है कि कुछ समयोपरांत भक्ति के ये तथाकथित सांसारिक संगीत एवं गीत फीके एवं रसहीन लगने लगते हैं। प्रारंभिक अवस्था में जीव को बाबाश्री के गाये हुए पदों को सुनने में रूचि पापों की अधिकतावश न हो सके परन्तु महापुरुषों द्वारा महापुरुषों के गाये हुए पद हृदयग्रंथि भेदन में सक्षम होते हैं एवं शनैः-शनैः जीव के पापों को काटते हैं। जीव का सांसारिक संगीत से मनविक्षेप तथा इन पदों में रूचि हो जाना ही प्रभु की कृपा का लक्षण है। पद गायन अथवा पदों को सुनने से हृदय कंठ में आना (उत्कंठा) भावोत्पत्ति के उदय का संकेत है।

बाबाश्री के गाये हुए पद किसी व्यवसायिक रिकॉर्डिंग स्टूडियो में न तो रिकॉर्ड किये गये तथा न ही उसके लिये टेक अथवा रिटेक लिये गये एतदर्थ नीर-क्षीर विवेकी अध्येतागण त्रुटियों के लिये क्षमा करें।

बाबाश्री द्वारा रचित श्री राधा रानी 'विनय प्रार्थना' पद शब्दावली यहाँ उद्धृत है। इस पद को आत्मसात कर पदज्ञान किसी तरह प्राप्त हो भी जाए परन्तु यह नीरस शब्दज्ञान विज्ञान का स्वरुप तब तक नहीं हो सकता जब तक इस पद की रस प्राप्ति महापुरुषों की वाणी द्वारा न हो। प्रयोग के लिये इस पद को आप श्री मानमंदिर की उपरोक्त उद्धरित वैश्विक प्रौद्योगिकी स्थल (website) पर सुने।

विनय सुनहु श्री राधा रानी ।
भव समुद्र को घोर अंधेरो, गहरो जाको पानी ॥
बह्यो जात हूँ तीक्ष्ण धार में, टेरत आरत बानी ॥
और सहाय यहाँ नहिं मेरो, यह मेरी मति ठानी ॥
कर गहि मोहि उबारो श्यामा, कृपा दान कर दानी ॥

(श्री रमेश बाबा जी महाराज द्वारा रचित)

श्री रमेश बाबा जी महाराज ने भक्त त्रिलोचन जी की कथा ०९ दिसम्बर २००८ एकादशी को श्री मानमंदिर में अध्ययनरत विद्यार्थियों एवं आये हुये ब्रजवासियों को सुनायी थी। यह कथा जन लाभ के लिये यहाँ पुनः उद्धरित है[1] –

देखो, भगवान् की सेवा साक्षात् कहाँ मिलती है? जब भगवान् मिलें तो उनकी सेवा मिले लेकिन अगर उनके भक्तों की सेवा मिल जाए तो वो भगवान् की सेवा से बड़ी होती है। इसीलिए तुलसीदास जी ने कहा है –

अन्तर्यामी गर्भगत साधु सुन्दरी माँहि ।
तुलसी पोषे एक के दोनों पोषे जाँहि ॥

किसी स्त्री के गर्भ में कोई बच्चा है, उसकी तुम सेवा नहीं कर सकते हो क्योंकि वह पेट के भीतर गर्भ में है लेकिन अगर उसकी माँ को तुम खिलाओ-पिलाओ तो पेट में जो बच्चा है वो अपने आप पुष्ट हो जाएगा। ऐसे ही भक्त जो है वो गर्भिणी स्त्री है, उसके भीतर अन्तर्यामी पेट में भगवान् रहते हैं। भक्तों की सेवा अगर कोई कर ले तो भगवान् की सेवा हो गयी और भगवान् की सेवा से बड़ी हो गयी।

भगवान् तो दिखाई नहीं पड़ता है, चिन्मय शरीर की भावना से सेवा हो जाती है। भगवान् की सेवा करने वाले तो बहुत हैं, भक्तों की सेवा करना कठिन है क्योंकि भक्त भी मनुष्य होता है, मनुष्य शरीर में श्रद्धा रखना कठिन है। जैसे - साधु-संत हैं ये खाते हैं, बीमार भी पड़ते हैं, खाँसी, जुखाम, बुखार एवं प्राकृतिक शरीर की कमजोरियाँ भी दिखाई पड़ती हैं – फिर भी उनकी सेवा करना ये बहुत बड़ी बात है। भगवान् भक्तों की सेवा से बहुत ज्यादा प्रसन्न होते हैं। देवगुरु बृहस्पति जी ने देवराज इन्द्र से कहा है –

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा ।
रामहि सेवकु परम पिआरा ॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई ।
सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥

(रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २१९)

---

[1] बाबाश्री की वाणी में इस वैश्विक प्रौद्योगिकी स्थल पर सुने - http://goo.gl/3Gpgsl

"मद्भक्तपूजाभ्यधिका" (भा. ११/१९/२१) इसीलिये जो चतुर लोग होते हैं वो भगवान् को छोड़कर भक्तों की सेवा करते हैं; चाहे वो कैसा भी भक्त हो।

तुलसी जाके बदन ते धोखेहु निकसत राम ।
वाके पग की पगतरी मेंरे तन को चाम ॥

धोखे से भी भगवन्नाम निकल जाए, उसको भी भक्त मान लो और अपने शरीर का चमड़ा काट के उसके पाँवों की जूती बना लो। ये एक बहुत बड़ी बात है, हमने देखा है जो लोग भक्तों की सेवा करते हैं, उनके यहाँ सुख-सम्पत्ति की कमी कभी नहीं होती है और वो सदा फलते-फूलते, भगवान् की कृपा प्राप्त करके भवसागर तर जाते हैं। इसी बात को दिखाने के लिए भगवान् स्वयं आते हैं, भक्तों की सेवा करते हैं, करके दिखाते हैं कि देखो, मैं भी भगवान् होकर भक्तों की सेवा करता हूँ, तुम भी सब करो।

एक कथा है भक्तमाल में **त्रिलोचन भक्त** की, बड़े भारी भक्त थे और उनके यहाँ भक्त लोग आया करते थे, सदा भीड़ लगी रहती थी। ५०-५०, १००-१०० भक्त कीर्तन करते हुए आ रहे हैं, भोजन कर रहे हैं, ऐसी जगह भगवान् जरूर आते हैं और सेवा करने आते हैं, खाली ये ही नहीं कि भण्डारा पा के चले गये। त्रिलोचन जी के यहाँ भगवान् गये एक मजदूर का रूप बनाकर के नौकरी ढूँढ़ने कि हमको कोई नौकर रख ले। त्रिलोचन जी को सेवक की जरूरत भी थी, क्योंकि ५०-५०, १००-१०० भक्तो के टोल आ जाएँ तो उनका भोजन बनाना, खिलाना आदि सेवा की जरुरत थी। वहाँ भगवान् एक मजदूर का रूप (फटी-सी एक फितूरी है, पाँव में जूता नहीं है, बहुत गरीब रूप) बनाकर गये। त्रिलोचन जी के यहाँ हर समय कीर्तन होता था, भगवान् के सच्चे भक्त थे। उनके यहाँ सैकड़ों भक्त प्रसाद पा रहे हैं, आ रहे हैं - जा रहे हैं; तो श्री ठाकुर जी स्वयं एक मजदूर का रूप बनाकर पहुँचे और बोले –

कोई नौकरी में रख ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।
मैं तो दास पुराना दासों का, मैं तो दास पुराना दासों का ॥

मजदूर रूप ठाकुर जी ने आवाज लगाई – "हमें कोई नौकर बना के रख ले, हम नौकरी माँगने आये हैं।"

त्रिलोचन जी भीतर से दौड़े, अरे ! हमारे यहाँ तो बहुत भीड़ रहती है, कोई आ गया, चलो बात करते हैं।

त्रिलोचन जी मजदूर रूप ठाकुर जी के पास गये और बोले – "अरे भैया ! तुम कौन हो, कहाँ से आये हो?"

ठाकुरजी हँस गये, समझ गए कि अब हमारा भक्त आ गया, बोले – "भाई ! देखो, मैं नौकरी ढूँढ़ने आया हूँ और नौकरी चाहिए।"

त्रिलोचन जी बोले – "अच्छा, भाई ! तुम नौकरी चाहते हो, तुम्हारा कोई पता-ठिकाना?"

मजदूर रूप ठाकुर जी बोले – "मेरे कोई माँ नहीं, मेरे कोई बाप नहीं।"

अब ठाकुर जी कह तो रहे हैं सच लेकिन त्रिलोचन भक्त समझ रहे हैं कि कहीं ऐसे अनाथ होयगो, काऊ ने पालन-पोषण कियो होयगो।

त्रिलोचन – "तो भाई ! तेरी तनखाय (वेतन) क्या है? क्या लेगा तू?"

मजदूर रूप में श्रीठाकुर जी – "देखो जी, एक भी पैसा नहीं लूँगो।"

त्रिलोचन – "तो नौकरी काय बात की?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "मैं खाऊँ ज्यादा, या मारे मोय कोई नौकर नहीं रखे।"

त्रिलोचन जी – "भैया ! कितनो खावै?"

मजदूर रूप ठाकुर जी –"पाँच किलो।"

त्रिलोचन जी – "अच्छा, भैया ! खायवै की कमी तो है नहीं।"

(वहाँ सैकड़ों भक्त भोजन करते हैं।)

जो सेवा करता है, वहाँ घाटा नहीं रहता; चाहे कैसी भी सेवा हो।

त्रिलोचन जी – "भाई ! पाँच किलो हम रोज खवायेंगे तोय और कोई तेरी ठहर, कोई शर्त?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "हमारी कोई निन्दा न करे तब हम नौकरी करते हैं। जा दिन कोई निन्दा करेगो, हम छोड़ के चले जायेंगे।"

त्रिलोचन जी – "अच्छा, भाई ! हम निन्दा क्यों करेंगे, हमारे यहाँ तो निन्दा को काम ही नहीं है, दिन-रात कीर्तन करैं और हमारे यहाँ जितने आवैं (कोई नातेदार, रिश्तेदार 'सांसारिक सम्बन्धी' नहीं आवैं), भगवान् के भक्त आवैं, उनकी सेवा कर लैगो?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "अरे, वही सेवा तो मैं जानूँ, भक्तन की सेवा मैं करूँ, याही मारे मैं तेरे दरवाजे आयो हूँ।"

(त्रिलोचन जी ने मन में सोचा - अरे, ये तो कोई भगत मालूम पड़े।)

त्रिलोचन – "भाई ! भक्त बड़े-बड़े आवैं, टेढ़े-मेढ़े आवैं, रिसेले-गुस्सेले आवैं।"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "मैं सब झेल लूँगो।"

त्रिलोचन जी – "अच्छा ! तो भाई, ये कपड़ा पहन ले। फटे-फटे तेरे कपड़ा हैं।"

त्रिलोचन जी ने मजदूर रूप ठाकुर जी की फटी सी फितूरी उतरवाय करके नए वस्त्र धारण कराये।

त्रिलोचन जी –"तेरो नाम का है?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "मेरो नाम है – **अन्तर्यामी।**"

त्रिलोचन जी – "**अन्तर्यामी** नाम तो बड़े जोर को रखो, कौन ने रखो भाई? "

मजदूर रूप ठाकुर जी – "पतौ नहीं साहब, मैंने पहले कह्यो - मेरी मैया-बाप नहीं।"

सब सच कह रहे हैं कि हम अन्तर्यामी भगवान् हैं लेकिन उनको पहिचान कौन सकै? मुश्किल तो ये है। फटे-फटे कपड़े में आये हैं, कोई पनहैया नहीं, जूती नहीं।

त्रिलोचन जी – "अच्छा भाई, अन्तर्यामी ! तू एक बात बताय कि सेवा कैसी कर सकैगो? "

मजदूर रूप ठाकुर जी – "सुनो –"

सेवा करने में मैं हूँ बड़ा चातुर सेवक मैं पुराना ।
सेवा ही की मैंने अब तक, सेवा धर्म ही जाना ॥
कोई एक बार अजमा ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।
कोई नौकरी में रख ले, भक्तों की सेवा करवा ले ॥
मैं तो दास पुराना दासों का ।

त्रिलोचन जी – "भाई ! तू कैसी-कैसी सेवा कर सकै, ये भी बता दे?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – सुनो, भाई !

कोई पग चप्पी करवा ले, चाहे सिर को मलवा ले ।
कोई सेना नाई की सी मालिस भी करवाय ले ॥
कोई नौकरी में रख ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।
चाहे जूती गठवाय ले, अच्छी गाठूँ रविदास से ।
चाहे कपड़ा सिलवाय ले, सिलूँ अच्छी परमेष्ठी से ॥
कोई मुझसे कुछ करवा ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।
कोई नौकरी में रख ले, भक्तों की सेवा करवा ले ॥
मैं तो दास पुराना दासों का ।

त्रिलोचन – "अरे भाई ! तू इतने काम जाने और तऊ तेरे ऊपर फटी सी फितूरी।"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "साहब ! हमने तो बता दियौ, हम सब काम जानैं लेकिन खावैं ज्यादा सो कोई नौकर नहीं रखे और रखउ ले तो बुराई करै, तो मैं भाग जाऊँ वहाँ ते।"

त्रिलोचन जी – "और क्या जाने? "

मजदूर रूप ठाकुर जी – "सुनो, भाई !"

चाहे चरखा चलवाय ले, अच्छी कातूँ मैं कबिरा से ।
चाहे कपड़ा रँगवा ले, अच्छी रँग दूँ मैं नामा से ॥
कोई सेवा कैसी भी करवा ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।
कोई नौकरी में रख ले, भक्तों की सेवा कर ले ॥

त्रिलोचन जी – "अरे भाई ! तेरे में तो बड़े गुण हैं और कहा जानै? "

मजदूर रूप ठाकुर जी – "और सुनो, साहब !"

चाहे चक्की पिसवाये ले, पीसा जनाबाई संग मैंने ।
चाहे नाच नचा ले मुझसे, नाचा मीरा संग मैंने ॥
मनचाही से कुछ करवा ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।
कोई नौकरी में रख ले, भक्तों की सेवा करवा ले ॥
मैं तो दास पुराना दासों का ।
कैसे भी गहना गढ़वाय ले, अच्छा गढ़ूँ त्रिलोकी भक्त से ।
खेत जुताय ले कुम्भन जैसा, खेत कटाय ले धन्ना जैसा ॥
कोई टहल सभी करवा ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।
कोई नौकरी में रख ले, भक्तों की सेवा करवा ले ॥
मैं तो दास पुराना दासों का ।

त्रिलोचन जी – "बस-बस, भैया ! तू तो बड़े काम को आदमी है और हमने तोय रख लियो ।"

अब (ठाकुर जी) अन्तर्यामी सेवा करने लग गये और कोई जान नहीं पायो ।

१०० साधु आ जायें, प्रसाद पायके जब सोवें तो उतने ही रूप धर लें और सबन्ह के जाय के पाँव दाबें, हर साधु सोचे हमारे ही पास है अन्तर्यामी ।

काऊ ने सोचो प्यास लगी है तो पहले पहुँच जायें लोटा लेकर के ।

प्यासा साधु – "अरे भाई ! अन्तर्यामी, तेरो नाम सच में अन्तर्यामी है, मोय प्यास लग रही और तू पहले से लोटा लेके आय गयो ।"

अन्तर्यामी – "हाँ जी, मोय सेवा को अभ्यास है ।"

यानि बड़ी सेवा करी और १३ महीने तक सेवा करते रहे ।

एक दिन त्रिलोचन भक्त की स्त्री गयीं पानी भरवे कुआ पै, तो वहाँ और गाँव की पनिहारी मिलीं (परस्पर में बातें करने लगीं) –

पनिहारिन – "अरे वीर ! तेरे यहाँ तो बड़ो अच्छो सेवक आ गयो है अन्तर्यामी, सब काम कर दे ।"

त्रिलोचन की स्त्री – "हाँ, सब काम कर दे, ढेर के ढेर बर्तन माँज दे, लकड़ी फाड़ दे, पानी भर दे, जहाँ जाय कोई काम बाकी नहीं रहे । काम करने की कहो और काम पूरो तैयार ।

लेकिन एक बात है - खावै बहुत, ५ किलो भोजन पूरो खाय जाय ।"

उधर बुराई करी और इधर अन्तर्यामी गायब । उनकी ठहर थी कि हम से सेवा तुम जन्म भर करवा लो, लेकिन निन्दा करने पर चला जाऊँगा ।

भगवान् शिक्षा दे रहे हैं कि **हम लोगों को निन्दा नहीं करनी चाहिए** (यह एक अक्षम्य पाप है)।

महात्माओं ने लिखा है –

लोके गरीयसी माता मातृतोऽप्यधिकः खलः ।
माता पुनाति हस्ताभ्यां खलस्तु निज जिह्वयामलम् ॥

(सुभाषित)

संसार में सबसे बड़ी मैया मानी गयी, क्योंकि अपने हाथों से मल आदि धोवे बच्चा के, मैया पाप को नहीं धो सकती है और जो दुष्ट लोग होते हैं वो जीभ से हम सबके पाप को निन्दा कर-करके अपनी जीभ से चाट-चाट के सब पाप को खा जाएँ। जो काम मैया नहीं कर सकती है वो काम निन्दक लोग (हम जैसे लोग) किया करते हैं, पाप तुमने किया निन्दा कर-करके तुम्हारा सारा पाप खा लिया हमने जीभ से।

इसीलिये शास्त्र में कहा गया है –

पर निन्दा सम अघ न गरीसा ।

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -१२१)

पराई निन्दा के समान पाप कुछ नहीं है।

तो जैसे ही अन्तर्यामी के बारे में त्रिलोचन जी की स्त्री ने पनहारिन से कहा कि अरी ! खावै बहुत, वैसे ही अन्तर्यामी गायब हो गये।

अब गायब हो गये तो वहाँ सब काम फैल रहा है।

त्रिलोचन जी बोले – "अरे अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ! ओ रे अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ! "

और दिना तो बुलाने की जरूरत नहीं थी, पहले ही हाजिर हो जाते थे। आज चिल्ला रहे हैं – अन्तर्यामी ! अन्तर्यामी ! ! अरे अन्तर्यामी ! ! !

कोई नहीं आ रहा है, त्रिलोचन जी समझ गये कि कोई न कोई किसी ने बुराई किया है, उसकी ठहर थी कि जिस दिन तुम बुराई करोगे हम यहाँ से चले जायेंगे।

भगवान् कभी नहीं चाहते हैं कि हमारा भक्त किसी की बुराई करे, निन्दा करे या पाप खावै। ये जीभ भगवान् के नाम के लिए है, भगवान् शिक्षा देते हैं कि तुम क्यों बुराई करते हो?

तो अब त्रिलोचन जी समझ गये, उतने में उनकी स्त्री आयी पानी भर के और उससे पूछा कि तैने क्या बुराई करी थी अन्तर्यामी की? पहले कुछ नहीं बोली चुप रही, बाद में कहा कि हाँ, अन्तर्यामी की निन्दा की थी पनिहारियों से कि 'खावै बहुत'।

त्रिलोचन जी ने अपनी स्त्री से कहा – "अरे, तैने अन्तर्यामी को गायब करा दियौ।"

त्रिलोचन जी अन्तर्यामी के वियोग में पागल होकर के चारों ओर घूमने लग गये और पुकारने लगे –

अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ! अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ऽ !! कहाँ गया अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ! ! !
मेरो प्राण अन्तर्यामी ! मेरो देह अन्तर्यामी !! ....
मेरी मैया अन्तर्यामी ! मेरो बाबा अन्तर्यामी !! ....
मेरो भैया अन्तर्यामी ! मेरो बन्धु अन्तर्यामी !! अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ! ....

सारा दिन बीत गया पागल की तरह, रात बीत गयी, अन्तर्यामी ! अन्तर्यामी ! ! चिल्लाते-चिल्लाते। न खाना खा रहे हैं, न पानी पी रहे हैं। स्त्री भी चुप, क्या करे? पति पागल हो गया। दूसरा दिन बीत गया, दूसरी रात बीत गयी, अन्तर्यामी ! .... कहाँ? अन्तर्यामी ! ! .....कहाँ? चिल्लाते हुए तीन दिन-तीन रात बीत गयीं बिना खाये-पिये;

तब अत्यन्त मधुर आकाशवाणी हुई –"अरे त्रिलोचन जी ! "

त्रिलोचन जी की ऊपर दृष्टि गयी, है तो कोई नहीं लेकिन आवाज आ रही है, बोले – "कौन है भैया ! "

आकाशवाणी – "मैं हूँ तुम्हारा इष्ट, मैं ही तुम्हारे घर में सेवा करने के लिए आया था। देखो, हमारी-तुम्हारी ठहर थी कि जब निन्दा होगी तब हम वहाँ से चले जायेंगे। अब तुम भोजन करो, हमारी आज्ञा मानकर के। तुम कहो तो फिर से तुम्हारी सेवा कर सकता हूँ, बोलो क्या चाहते हो?"

अब त्रिलोचन जी चुप। भगवान् से कैसे कहें कि आप फिर से आओ, जूठे बर्तन माँजना, हमारी जूती को गाँठ देना, हमारे कपड़ों को धो देना, हमारी लंगोटी धो देना, कैसे कह सकता है भगवान् का भक्त।

त्रिलोचन जी बोले – "प्रभु ! आपने हमको ठग लिया, आप भगवान् होकर के और हमारे घर में आपने ऐसी नीच सेवायें किया, मोरी साफ करते थे - मल-मूत्र तक, जूठे बर्तन माँजते थे आप, जूती गाँठते थे, आपने क्या नहीं किया। मैं तो पापी हूँ, नीच हूँ, मुझको तो डूब कर मर जाना चाहिए, आपसे मैंने सेवा लिया। मैं कैसे कह सकता हूँ कि आप सेवा करने के लिए आओ।"

भगवान् बोले – "तो तुम भोजन करो और तुम्हारी सेवा जो भक्तों की सेवा है, हम उससे प्रसन्न हैं, हम ये बताने के लिए तुम्हारे घर नौकरी करने आये थे।"

देखो – जो व्यक्ति भक्तों की सेवा करता है, भगवान् उसके घर जरूर आते हैं, इससे शिक्षा मिलती है।

तुलसीदास जी

अब लौं नसानी अब न नसैहौं

अब तक मेरा जीवन प्रमादवश व्यर्थ ही नष्ट हो गया लेकिन अब मैं इसे यूँ ही व्यर्थ नहीं जाने दूँगा। प्रभु श्री राम की कृपा से भव बन्धन की मोहमयी रात्रि अब समाप्त हो गयी है, जागने के बाद अब पुनः मोह निशा का बिस्तर नहीं बिछाऊँगा (मोह निद्रा में फिर नहीं सोऊँगा)। मैंने राम नाम की अमूल्य चिन्तामणि प्राप्त कर ली है, उसे हृदय में बसाकर कभी भी हृदय रूपी हस्त से खिसकने नहीं दूँगा। श्रीरघुनाथ जी के सुन्दर श्याम रूप को कसौटी बनाकर, उस पर अपने चित्त रूपी स्वर्ण का परीक्षण करूँगा। अनादिकाल से चंचल इन्द्रियों के वश में होने के कारण इन्होंने मेरा अत्यधिक परिहास किया (मुझे विषयों में बुरी तरह फँसाये रखा) किन्तु अब मैं इन्हें अपने वश में करके, फिर कभी इनके अधीन होकर अपनी हँसी नहीं कराऊँगा (अपना अधः पतन नहीं होने दूँगा)। तुलसी दास जी कहते हैं – प्रण पूर्वक अपने मन रूपी मधुकर को भगवान् श्री राम के चरणारविन्दों में सदा के लिए नियोजित कर दूँगा (प्रभु के चरण कमलों को छोड़कर मन को अन्यत्र कहीं विचरण नहीं करने दूँगा)।

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं ॥
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं ।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस है न हँसैहौं ।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥

काहे ते हरि मोहिं बिसारो

हे हरि! आपने मुझे क्यों भुला दिया? प्रभो! आप अपनी अनन्त महिमा और मेरी अत्यधिक भीषण पापराशि को जानकर भी मेरा सुधार नहीं करते हैं। चारों वेद आपकी महिमा गायन करते हुए वर्णन करते हैं कि आप पतित-पावन, दीनों के हितैषी और अशरण-शरण हैं तो क्या मैं पतित, भयातुर और दीन-हीन नहीं हूँ और ऐसी स्थिति में मेरा उद्धार न करने के कारण क्या यह वेद वाणी मिथ्या है? प्रथम तो आपने मुझे प्रसिद्ध पातकियों जैसे - अधम पक्षी जटायु, गणिका, गजराज और

व्याध की पंक्ति में बैठा लिया (अर्थात् पापी जानकर मेरा उद्धार करना स्वीकार कर लिया) किन्तु हे कृपानिधान! अब किसकी लज्जावश (उद्धार करने का समय आने पर) आपने मेरे लिए परोसी हुई पत्तल को फाड़ दिया (अब मेरा उद्धार नहीं करते हैं)। हे हरि! यदि मुझे पता होता कि यह कलियुग आपसे भी अधिक बलशाली है और आपकी आज्ञा उल्लंघन करने वाला है तो मैं आपका विश्वास और गुणगान

काहे ते हरि मोहिं बिसारो ।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो ॥
पतित-पुनीत, दीनहित, असरन-सरन कहत श्रुति चारो ।
हौं नहिं अधम, सभीत, दीन? किधौं बेदन मृषा पुकारो ॥
खग -गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ तहँ हौंहूँ बैठारो ।
अब केहि लाज कृपानिधान! परसत पनवारो फारो ॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो, तुव निदेसतें न्यारो ।
तौ हरि रोष भरोस दोष गुन तेहि भजते तजि गारो ॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम, करहु प्रभाउ तुम्हारो ।
यह सामरथ अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो ॥
नाहिन नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो ।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु, नामहु पाप न जारो ॥

करना त्यागकर तथा उस (कलियुग) पर रोष करना और दोषारोपण करना छोड़कर उसी के भजन में लग जाता किन्तु आपके अतुलनीय प्रभाव से तो अत्यन्त तुच्छ मच्छर भी ब्रह्मा के समान और सृष्टिकर्ता ब्रह्मा मच्छर के समान बन सकता है; ऐसी अद्‌भुत सामर्थ्य के होते हुए भी आप मेरा त्याग कर रहे हैं। हे नाथ ! अब मेरे वश में क्या रह गया है? यद्यपि मैं सभी तरफ से हारा हुआ हूँ और मुझे नरक में जाने का भी बिल्कुल भय नहीं है किन्तु हे प्रभु ! मुझ तुलसीदास को यही एक बहुत बड़ा कष्ट है कि आपका नाम भी मेरे पापों को जला नहीं पाया।

बिस्वास एक हरि-नामको

मुझे तो एकमात्र श्री हरि नाम का ही विश्वास है। मेरे वाम भाव वाले मन का ऐसा स्वभाव है कि वह अन्यत्र कहीं विश्वास ही नहीं करता है। छः प्रकार के शास्त्रों तथा ऋक्, यजु, अथर्व, साम आदि वेदों का पढ़ना मेरे भाग्य में ही नहीं लिखा है। व्रत, तीर्थ, तप आदि साधनों का तो नाम सुनकर ही भय लग जाता है। ऐसा कौन है जो इन साधनों को करके पच-पचके मरे या शरीर को क्षीण करे? कर्मकाण्ड का अनुष्ठान भी कलियुग में अत्यन्त कठिन है और उसके लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता है। शेष बचे साधन ग्यान, वैराग्य, जोग, जप, तप आदि को करने में काम, क्रोध, लोभ और मोह का भय लगा रहता है। भव समुद्र को सुखाने के लिए रघुकुल नायक श्री राम के गुण समूहों का गान करने वाले ही सर्वदा सब प्रकार से योग्य हैं। जो साधक भगवन्नाम रूपी

बिस्वास एक हरि-नामको ।
मानत नहिं परतीति अनत एसोइ सुभाव मन बामको ॥
पढ़िबो पर्‍यो न छठी छ मत रिगु जजुर अथर्वन सामको ।
ब्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचि मरै करै तन छामको ॥
करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दामको ।
ग्यान बिराग जोग जप तप, भय लोभ मोह कोह कामको ॥
सब दिन सब लायक भव गायक रघुनायक गुन-ग्रामको ।
बैठे नाम-कामतरु-तर डर कौन घोर घन घामको ॥
को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर पर धामको ।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलामको ॥

कल्पवृक्ष की छाया में बैठे हैं, उन्हें भला घनघोर घटा (माया के अन्धकार) और तेज धूप (त्रिविध तापों का कष्ट) से क्या भय है। इस संसार में ऐसा कौन है जो जान ले कि कौन नरक जाएगा, कौन स्वर्ग जाएगा तथा कौन भगवान् के परम धाम को गमन करेगा? तुलसीदास जी कहते हैं कि मुझे तो इस संसार में राम का गुलाम बनकर जीवन यापन करना ही सबसे अच्छा लगता है।

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो

क्या मैं कभी इस प्रकार की रहनी से रह सकूँगा? कृपालु श्रीरघुनाथ जी की कृपा से मैं संतों का सा स्वभाव कब धारण कर सकूँगा? जो कुछ भी मिल जाए, सदा-सर्वदा उसी से संतुष्ट रहूँगा और किसी भी व्यक्ति से किसी प्रकार की कामना नहीं करूँगा। निरन्तर परहित में ही संलग्न रहूँगा

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें, संत-सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।
पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो ॥

एवं मन, कर्म तथा वचन से भक्ति के नियमों का पालन करूँगा। कानों से अत्यन्त कठोर और असहनीय वचनों को सुनकर भी क्रोध की अग्नि में नहीं जलूँगा। अभिमान का त्याग कर दूँगा, मन को समत्व और शान्ति से युक्त कर दूँगा तथा वाणी से दूसरों के गुण-दोषों की व्यर्थ चर्चा नहीं करूँगा। शरीर सम्बन्धी समस्त प्रकार की चिंताओं का त्याग कर सुख-दुःख के प्रति समबुद्धि रखकर उन्हें निर्विकार भाव से सहन करूँगा। तुलसीदास जी कहते हैं – हे प्रभो ! (दैवी संपदा से युक्त) इस पथ का अनुसरण करते हुए क्या कभी मैं अनपायनी हरि-भक्ति को प्राप्त कर सकूँगा?

जाके प्रिय न राम बैदेही

जिसको श्रीराम-जानकी जी प्रिय नहीं है, उसे करोड़ों शत्रुओं के समान त्याग देना चाहिए, चाहे वह अपना अत्यधिक प्रिय क्यों न हो। जिस प्रकार प्रह्लाद जी ने अपने पिता हिरण्यकशिपु को, विभीषण ने अपने बड़े भाई रावण को, भरत जी ने अपनी माता कैकेयी को, राजा बलि ने अपने गुरु शुक्राचार्य को और ब्रज-गोपियों ने अपने पतियों को भगवत् प्राप्ति में बाधा समझकर त्याग दिया, परन्तु ये सभी आनन्द और कल्याण करने वाले हुए। संसार में जितने भी हितैषी और सर्वाधिक पूजनीय जन हैं, वे सब श्रीरघुनाथ जी के ही सम्बन्ध और प्रेम से प्रिय माने जाते हैं, बस अब और अधिक कहाँ तक कहूँ। ऐसा अंजन किस काम का जिसको लगाने से आँखें ही फूट जाऐं। तुलसीदास जी कहते हैं - जिसकी संगति या सदुपदेश से श्रीरघुनाथ जी के चरणकमलों में प्रेम उत्पन्न हो जाये, वही अपना सबसे बड़ा हितैषी, पूज्य और प्राणों से भी अधिक प्रिय है, मेरा तो ऐसा ही मत है।

जाके प्रिय न राम-बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी ॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
'तुलसी' सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥

ऐसी कौन प्रभु की रीति

भगवान् के अतिरिक्त और किस स्वामी की इस तरह की रीति है जो अपने विरद (प्रण) के लिए पावन जीवों को छोड़ कर पतितों पर प्रेम करता हो? पूतना अपने स्तनों पर भयंकर कालकूट विष लगाकर भगवान् कृष्ण को मारने गई थी, परन्तु कृपालु यादवराय श्रीकृष्ण ने उसे माता के समान सद्गति प्रदान कर दी। काममोहित गोपिकाओं पर श्यामसुन्दर ने ऐसी अतुलनीय कृपा की जिसके कारण जगत्पिता ब्रह्मा जी ने भी उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर धारण किया। प्रतिदिन शिशुपाल नियम पूर्वक गिन-गिनकर उनको गालियाँ देता था, उसको परम कृपालु श्री हरि ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में राजाओं की सभा में सबके देखते ही देखते अपनी दिव्य देह में लीन कर लिया। मन्दबुद्धि बहेलिए ने तो मृग समझ आपके चरणकमलों को लक्ष्य बनाकर बाण का आघात किया, किन्तु उसे भी आपने अपनी करुणा की बान (स्वभाव) प्रकट करके सशरीर अपने

निजलोक को भेज दिया। इन प्राणियों के बारे में क्या कहा जाय जिन्होंने सत्कर्म (पुण्य) और दुष्कर्म (पाप) दोनों ही किये हैं क्योंकि वे तो सद्गति पाने के योग्य भी थे, परन्तु उन कृपासिन्धु भगवान् ने तो प्रत्यक्ष पाप स्वरूप तुलसीदास को भी अपनी शरण में ले लिया है, इस प्रकार उनका करुणा करने का स्वभाव (विरद) सहज ही सिद्ध हो जाता है।

ऐसी कौन प्रभु की रीति ।
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥
काममोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह ।
जगत-पिता बिरंचि जिन्हके चरन की रज लीन्ह ॥
नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि-गनि गारि ।
कियो लीन सु आपमें हरि राज-सभा मँझारि ॥
ब्याध चित दै चरन मार्‌यो मूढ़मति मृग जानि ।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥
कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ ।
प्रगट पातकरूप 'तुलसी' सरन राख्यो सोउ ॥

रघुबर रावरि यहै बड़ाई

हे रघुवर ! आपकी यही बड़ाई है कि आप गणमान्य (सम्मानित) लोगों का अनादर करके दीन-हीन प्राणियों पर अधिक कृपा करते हैं। बड़े-बड़े देवता सभी प्रकार के साधन करके थक गये एवं निराश हो गए किन्तु स्वप्न में भी वे आपका दर्शन न कर सके जबकि केवट और कुटिल भालू, बन्दर और असुर विभीषण आदि के साथ सगे भाई की तरह व्यवहार किया। वनवास काल में दण्डकारण्य में अनेकों श्रेष्ठ मुनियों से आपका मिलन हुआ लेकिन अयोध्या लौटकर आने पर कभी भी उनकी किसी से चर्चा तक नहीं की लेकिन गीध (जटायु) और शबरी के प्रेम का आपने बारम्बार बखान किया। कुत्ते द्वारा शिकायत किये जाने पर आपने एक सन्यासी को हाथी पर बिठाकर नगर से निर्वासित कर दिया और और जगत-जननी जानकी जी की निन्दा करने वाले मन्दमति धोबी को अपनी प्रजा मानकर अपने नगर अयोध्या में बसाए रखा। प्रभु के दरबार में सदा

रघुबर ! रावरि यहै बड़ाई ।
निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई ॥
थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं देत दिखाई ।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप, कियो सकल सँग भाई ॥
मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरी की बरनत प्रीति सुहाई ॥
स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई ।
तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई ॥
यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।
दीनदयालु दीन 'तुलसी' की काहु न सुरति कराई ॥

से यह रीति चली आ रही है कि वहाँ दीनों का ही आदर होता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे दीनबन्धु ! इस दीन-हीन तुलसी की किसी ने आपको आज तक सुधि नहीं दिलाई।

जो पै राम-चरन-रति होती

यदि प्रभु श्री राम के चरणों में मेरा प्रेम होता तो दिन-रात मुझे त्रिविध कष्ट और विपत्तियों को क्यों सहना पड़ता? दिन-रात में अगर स्वप्न में भी यह मन संतोष रूपी अमृत पा ले तो विषयों के मिथ्या मृगतृष्णा रूपी जल को देखकर यह उसके पीछे हिरन बनकर क्यों दौड़ेगा? यदि भगवान् श्रीपति की महिमा को हृदय में विचारकर और भावयोग के साथ उनका

जो पै राम-चरन-रति होती ।
तौ कत त्रिबिध सूल निसिबासर सहते बिपति निसोती ॥
जो संतोष-सुधा निसिबासर सपनेहुँ कबहुँक पावै ।
तौ कत बिषय बिलोकि झूंठ जल मन-कुरंग ज्यों धावै ॥
जो श्रीपति-महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार-द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥
जे लोलुप भये दास आसके ते सबही के चेरे ।
प्रभु-बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥
नहिं एकौ आचरन भजन को, बिनय करत हौं ताते ।
कीजै कृपा दास 'तुलसी' पर, नाथ नाम के नाते ॥

हम भजन करते तो आज नीच कुत्ते की तरह हर किसी के द्वार पर पेट दिखाते हुए दयनीय अवस्था में क्यों भटकना पड़ता? विषय लोलुप होकर जो लोग सांसारिक कामना के दास बने हुए हैं, उन्हें तो सबका दास बनना ही पड़ेगा किन्तु प्रभु में विश्वास स्थापित करके जिन्होंने सांसारिक सुखों की आशा को जीत लिया है, वे तो श्री हरि के सच्चे दास हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे प्रभु ! मेरे जीवन में भजन का एक भी आचरण नहीं है इसलिये आपसे विनय करता हूँ कि आपका नाम है पतित पावन, दीनबंधु-दीनानाथ, इसलिए इस नाम को सार्थक करते हुए इस नाम के नाते मुझ दीन पर कृपा कीजिए।

जो मोहि राम लागते मीठे

गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि मुझे भगवान् राम मीठे लगते तो साहित्य के नवरस[1] एवं भोजन के छः रस[2] बिलकुल फीके, रसहीन मालूम पड़ते। चौरासी लाख योनियों में अनेक प्रकार के शरीर धारण करने पर यह मुझे अनुभव हो चुका है और इस मनुष्य शरीर में भी मैंने महापुरुषों के मुख से

---

[1] श्रृंगार, हास्य, करुणा, वीर, रूद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत साहित्य के ये नौ रस हैं।

[2] कड़वा, तीखा, मीठा, खट्टा, कसैला और नमकीन – ये छः भोजन के रस हैं।

सुना और स्वयं भी देखा है कि ये विषय मिथ्या और ठगने वाले हैं। विषयों की असारता को अपने हृदय में अच्छी तरह जानता भी हूँ परन्तु स्वप्न में भी

जो मोहि राम लागते मीठे ।
तो नवरस षटरस-रस अनरस है जाते सब सीठे ॥
बंचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे ।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे ॥
'तुलसीदास' प्रभु सों एकहिं बल बचन कहत अति ढीठे ।
नामकी लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे ॥

कभी मेरा मन इनसे अतृप्त नहीं होता (विरक्ति का अनुभव नहीं होता)। हे प्रभु ! यह तुलसीदास एक ही बल पर आपसे ढिठाई से युक्त वचन कह रहा है कि आपने अपने नाम की लाज रखने के लिए (ऐसा कौन है जिसको नाम लेने पर) आपने करुणावश अपार भवसागर से पार नहीं लगा दिया?

मन पछितैहै अवसर बीते

हे मन ! मनुष्य योनि को पाकर भजन न करने पर यह सुअवसर बीत जाने पर भविष्य में तुझे पछताना पड़ेगा। देव दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर कर्म, वचन और हृदय से श्री हरि के चरणारविन्दों का भजन कर। प्राचीन काल में सहस्त्रबाहु और दशानन रावण जैसे महाबली राजा

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते ।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ।
अंतहु तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते ॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते ।
बुझे न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते ॥

भी परम बलशाली काल से नहीं बच पाये, उन्हें भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा। इन्होंने और इनके जैसे अन्य राजाओं ने अहंकार वश 'मैं-मेरा' करते हुए अपार धन का संग्रह किया और बड़े-बड़े महल बनाये लेकिन अन्त काल में उन्हें इस संसार से खाली हाथ ही जाना पड़ा। स्त्री-पुत्र आदि केवल स्वार्थी हैं, ऐसा जानकर इनसे प्रेम मत कर। तेरे अन्त काल में ये सब तुझे छोड़ देंगे अतः तू अभी से इनका त्याग क्यों नहीं करता? मूर्ख, अब मोह निद्रा से जाग जा और अनाथों के नाथ भगवान् से प्रेम कर तथा हृदय से संसारी विषयों से सुख पाने की दुराशा का त्याग कर दे। तुलसीदास जी कहते हैं कि कामना की आग विषय भोग रूपी घी से कभी नहीं बुझ सकती।

जो पै लगन राम सों नाहीं

जिसे प्रभु श्री राम से प्रेम नहीं है, वह मनुष्य इस संसार में गधे, कुत्ते और सुअर के समान व्यर्थ ही जी रहा है। सृष्टि के जड़-चेतन आदि सभी जीवों में काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख-प्यास आदि विकार होते हैं किन्तु देवता एवं संत मनुष्य शरीर की प्रशंसा इसीलिये करते हैं कि केवल इसी शरीर से भगवान् (सीताराम) के प्रति प्रेम सम्भव है। चाहे कोई शूरवीर हो, सर्वज्ञ हो, माता-पिता के सेवापरायण सुपुत्र हो, सुन्दर लक्षणों से युक्त हो, सद्‌गुणों से सम्पन्न हो तथा श्रेष्ठ लोगों में उसकी गणना हो किन्तु यदि वह हरिभजन परायण नहीं है तो इन्द्रयाण फल की तरह है जो देखने में अत्यधिक सुन्दर होने पर भी अपनी कड़वाहट नहीं छोड़ पाता। यदि कोई कीर्ति, उच्च कुल, श्रेष्ठ करनी, उत्तम ऐश्वर्य, शील और सुन्दर रूप से युक्त होकर भी भगवान् के प्रेम से रहित है तो तुलसीदास जी कहते हैं कि उसके ये सभी उत्तम गुण बिना नमक की सब्जी के समान हैं।

जो पै लगन राम सों नाहीं ।
तौ नर खर कूकर सूकर सम बृथा जियत जग माहीं ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के ।
मनुज देह सुर-साधु सराहत, सो सनेह सिय-पीके ॥
सूर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।
बिनु हरिभजन इँदारुन के फल तजत नहीं करुआई ॥
कीरति, कुल करतूति, भूति भलि, सील सरूप सलोने ।
'तुलसी' प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥

मेरो मन हरि जू! हठ न तजै

हे श्री हरि ! मेरा यह मन विकर्म करने का अपना हठ नहीं छोड़ रहा है। हे दीनानाथ ! अनेकों विधियों से दिन-रात मैं इसे समझाता हूँ किन्तु यह तो अपने निज स्वभाव के अनुसार ही चेष्टा करता है। जैसे युवा स्त्री को प्रसव काल में अत्यधिक भीषण कष्ट का अनुभव होता है लेकिन कष्ट निवृत्ति के बाद अनुकूल समय आने पर वह मूर्खा उस

मेरो मन हरि जू ! हठ न तजै ।
निसिदिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाउ निजै ॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै ।
है अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै ॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यौं जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ॥
हौं हार्‌यौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै ।
'तुलसीदास' बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥

भयंकर वेदना को भूल जाती है और दुःख के उत्पत्ति स्थान विषय सुख के लिए पुनः पति से सम्पर्क करती है, जिस प्रकार रोटी की लालसा से कातर होकर कुत्ता दर-दर भटकता है, उसी तरह यह मन भी कुत्ते की तरह इतना नीच बन जाता है कि अपमान, बदनामी सहकर भी भोगों की ओर हर समय दौड़ता रहता है, कभी भी इसे लज्जा का अनुभव नहीं होता। मैंने इस मूढ़ मन को वश में करने के अनेकों प्रयास किये लेकिन यह इतना बलशाली हो गया है कि अपनी चंचलता नहीं छोड़ रहा है। हे प्रभु ! मैं तो सारे प्रयास करके हार गया, अब तो यह केवल आपकी कृपा से ही नियंत्रण में होगा क्योंकि इस मन की चेतना के दाता आप ही हैं। (मन आपसे शक्ति पाकर ही विषयों में दौड़ता है अतः जब तक आप इसका निग्रह नहीं करोगे यह स्थिर नहीं होगा)।

यह बिनती रघुबीर गुसाईं

हे रघुकुल के नाथ श्री रामचन्द्र जी ! आपसे यही प्रार्थना है कि यह जीव आपको छोड़कर दूसरे संसारी लोगों की आशा, विश्वास और भरोसा करता है; जीव की इस मूर्खता (जड़तापन) को दूर कर दें। हे राम ! मैं सद्गति, सद्बुद्धि, सांसारिक धन, ऋद्धि-सिद्धि, बहुत ज्यादा प्रशंसा आदि कुछ नहीं चाहता हूँ। बस, मेरा तो आपके चरण-कमलों में दिन-प्रतिदिन अधिक से अधिक नित्य नवीन कारण रहित विशुद्ध प्रेम (अहैतुकी प्रेम) बढ़ता रहे। बुरे (नीच) कर्म जबरदस्ती मुझे जिस-जिस योनि में ले जाएँ, उस-उस योनि में हे नाथ ! कमठ-अंड की तरह (जैसे कछुआ अपने अण्डों का कई मील दूर से ही निरन्तर चिन्तन द्वारा पालन-पोषण करता है वैसे ही) एक क्षण के लिए भी आप अपना छोह (स्नेह, दया, प्रेम) नहीं छोड़ना। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे प्रभु ! इस संसार में जहाँ तक इस शरीर का प्रेम, विश्वास, सम्बन्ध है वो सब सिमिटकर केवल आपसे हो जाय।

यह बिनती रघुबीर गुसाईं ।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाईं ॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब 'तुलसीदास' प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी

हे नाथ ! आप दयालु हैं तो मैं दीन हूँ, आप दानी हैं तो मैं भिखारी हूँ। आप पाप समूहों का हरण करने वाले हैं तो मैं प्रसिद्ध पापी हूँ। आप अनाथों के नाथ हैं तो मेरे समान अनाथ कौन है? आपके समान कोई दुःखों को हरने वाला और मेरे समान कोई दुःखी नहीं है। आप ब्रह्म हैं और मैं जीव हूँ। आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूँ। आप ही मेरे माता-पिता, गुरू, सखा, सब तरह से हितकारी हैं। आपके-मेरे अनेक नाते सम्बन्ध हैं जो अच्छा लगे वही मान लें । तुलसीदास जी कहते हैं कि हे कृपालु ! जिस किसी भी तरह से मुझे आपके चरणों की शरण मिल जाए।

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो ।
तात-मात, गुरु, सखा, तू सब बिधि हितु मेरो ॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै ।
ज्यों त्यों 'तुलसी' कृपालु! चरन-सरन पावै ॥

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं

कन्हैया यशोदा मैया से कहते हैं – मैया ! ये गोपियाँ मुझ पर झूठा दोषारोपण करती हैं। इन्हें तो दूसरे के घर घूमने-फिरने की आदत पड़ गयी है, इसलिए तरह-तरह के बहाने बनाकर ये यहाँ आने का उपाय ढूँढ़ती रहती हैं। इनके आरोपों से बचने के लिए मैंने खेलना भी छोड़ दिया फिर भी बच नहीं पाया । ये अपने माट-मटकों को स्वयं ही फोड़ देती हैं और दूध-दही से हाथ सानकर मुझे उलाहना देने के लिए यहाँ चली आती हैं। कभी-कभी अपने बच्चों को स्वयं ही रुलाकर, उनका हाथ पकड़कर मेरे ही ऊपर दोष मढ़ने के

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं ।
मैया! इन्हहिं बानि परगृहकी, नाना जुगुति बनावहिं ॥
इन्हके लिए खेलिबो छाड्यों तऊ न उबरन पावहिं ।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस देन उरहनों आवहिं ॥
कबहुंक बाल रोवाइ पानि गहि मिसकरि उठि-उठि धावहिं ।
करहिं आपु सिर धरहिं आनके बचन बिरंचि हरावाहिं ॥
मेरी टेव बूझि हलधरको संतत संग खेलावहिं ।
जे अन्याउ करहिं काहू को ते सिसु मोहि न भावहिं ॥
सुनि-सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि हँसि-हँसि बदन दुरावहिं ।
बालगोपाल केलि-कल-कीरति 'तुलसिदास' मुनि गावहिं ॥

लिए भागी हुई चली आती हैं। गलत काम स्वयं करती हैं और उसका दोष दूसरों के ऊपर लगाती हैं। बातें बनाने में ये इतनी चतुर हैं कि ब्रह्मा को भी पराजित कर दें।

हे मैया ! मेरा कैसा निर्मल स्वभाव है, ये तो तुम दाऊ भैया से स्वयं ही पूछ लो, मेरे साधु स्वभाव के कारण ही निरन्तर वो मुझे अपने साथ खिलाते हैं। जो बच्चे दूसरों के साथ अन्याय करते हैं वे मुझे बिल्कुल भी पसंद नहीं हैं। बाल गोपाल की वाक् पटुता को देखकर गोपियाँ अपना मुँह छिपाकर बड़े जोर से हँसने लगती हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि गोपाल जी के निर्मल बाल चरित्रों का ऋषि -मुनिगण गान किया करते हैं।

गोकुल प्रीति नित नई जानि

गोकुल प्रीति नित नई जानि ।
जाइ अनत सुनाइ मधुकर ग्यानगिरा पुरानि ॥
मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहिं दिखाउ निरगुन खानि ।
नवल नंदकुमार के ब्रज सगुन सुजस बखानि ॥
तू जो हम आदर्‌यो सो तो ब्रज कमल की कानि ।
तजहि 'तुलसी' समुझि यह उपदेसिबे की बानि ॥

गोपियाँ कहती हैं – हे उद्धव जी ! गोकुल (ब्रज) में तो प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान (बढ़ता) ही रहता है। अतः किसी अन्यत्र स्थान पर जाकर ज्ञान का उपदेश कहो। कहीं वृद्ध और बुद्धिमान योगी मिलें तो उन्हीं को निर्गुण ब्रह्म की खान का प्रदर्शन करो। इस ब्रज भूमि में तो सगुण साकार नवीन अवस्था वाले रसमय नन्दनन्दन के ही सुयश का वर्णन करो। हमने जो तुम्हारा सम्मान किया वो इसलिये किया कि तुम यहाँ ब्रज के कमल श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि के रूप में आये हो, उनके प्रिय सखा हो, अतः उनका प्रेम सन्देश सुनने के लिए तुम्हारा आदर किया न कि नीरस ज्ञान का उपदेश सुनने के लिए। तुलसीदास जी कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव जी को सावधान करते हुए कहती हैं कि इस वास्तविकता को समझकर अब हमें निर्गुण मत के ज्ञानोपदेश करने का अपना आग्रह त्याग दो।

कबीर दास जी

पढ़ो रे भाई ! राम गोविन्द हरी

हे भाई ! राम-गोविन्द-हरि ....इन भगवन्नामों की पढ़ाई पढ़ो (इस पढ़ाई के अतिरिक्त संसार की अन्य पढ़ाईयाँ भगवद्भक्ति से दूर करने वाली हैं)। भगवन्नाम संकीर्तन करने में जप, तप...आदि कठिन साधन करने की जरूरत नहीं है, न ही धन आदि खर्च होता है । सांसारिक सुख, सम्पत्ति, संतान, सम्बन्धियों ... आदि में आसक्ति के कारण मनुष्य अपने वास्तविक लक्ष्य भगवान् की आराधना को करना भूल जाता है। कबीरदास जी कहते हैं कि जो भगवन्नाम नहीं लेता है वो जीवित रहने पर भी मुर्दे के समान है और मरने के बाद चौरासी लाख योनियों में भटकता है।

पढ़ो रे भाई ! राम गोविन्द हरी ।
जप तप साधन कछु नहिं लागत, खरचत नहिं गठरी ॥
संतति संपति सुख के कारन, जासों भूल परी ।
कहत 'कबीर' जा मुख राम न, वा मुख धूर परी ॥

बीत गए दिन भजन बिना रे

भगवान् का भजन किये बिना मनुष्य अपना सारा जीवन व्यर्थ ही गँवा देता है। बाल्यावस्था तो खेल खेलने में नष्ट कर देता है और युवावस्था में घोर अभिमान से ग्रसित होकर जवानी को गँवा देता है। लोभ के कारण मूलधन को भी नष्ट कर देता है, अब अंतिम अवस्था (वृद्धावस्था) आने पर भी मन से विषयों की प्यास (तृष्णा) नहीं जाती है बल्कि और बढ़ती जाती है। कबीरदास जी साधुओं को लक्ष्य करके कहते हैं कि जो सच्चे संत थे वे तो भव सागर के पार उतर गये (अतः तुम भी शीघ्र पार उतर जाओ)।

बीत गए दिन भजन बिना रे ।
बाल अवस्था खेल गँवायो, जब जवान तब मान घना रे ॥
लाहे कारन मूल गँवायो, अजहुँ न गई मन की तृष्ना रे ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, पार उतर गए संत जना रे

मुखड़ा क्या देखै दरपन में

हे मनुष्य ! तू दर्पण में अपना चेहरा क्या देखता है, तेरे मन में तो दया और धर्म लेशमात्र भी नहीं है। युवावस्था में तूने युवतियों को रिझाकर अपने शरीर में माया का धब्बा लगा लिया। रेशमी धोती पहनकर और सिर पर पाग लपेटकर तूने आकर्षक वेष बनाया और केशों को सुगन्धित तेल से इस तरह सजाया कि जुल्फों से तेल चूता है, तेरा यह कर्म ऐसा है कि अपार भव सागर को तू पत्थर की नाव के सहारे क्षणमात्र में पार करना चाहता है। कबीरदास जी कहते हैं कि हे साधुओ ! इस तरह के कायर विषयी मनुष्य प्रेम और भक्ति की रणभूमि में पाँव नहीं रख सकते हैं।

मुखड़ा क्या देखै दरपन में तेरे दया धरम नहिं मन में ।
गली-गली की राँड़ रिझाई दाग लगाया तन में ॥
झाीनी धोती पाग लपेटे तेल चुचै जुलफन में ।
पाथर की एक नाव बनायी उतरा चाहे छिन में ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो कायर चढ़ै न रन में ॥

मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे

भगवान् कहते हैं – हे भक्त ! तू मुझे संसार में कहाँ खोज रहा है? मैं तो सदा तेरे निकट ही विराजमान हूँ। मैं न तो किसी तीर्थ स्थान में रहता हूँ, न मंदिर की मूर्ति में रहता हूँ, न एकान्त निवास में रहता हूँ, न मैं मंदिर में रहता हूँ, न मस्जिद में रहता हूँ और न ही काशी और कैलाश आदि पवित्र स्थानों में रहता हूँ। न तो मेरी प्राप्ति जप से होती है, न तपस्या से, न ही व्रत-उपवास से। न तो मैं किसी क्रिया या कर्म से वश में होता हूँ, न ही योग, सन्यास आदि मेरी प्राप्ति कराने में समर्थ हैं। यदि कोई सच्चाई से मेरी खोज में चले तो क्षण भर के प्रयास से मैं मिल जाता हूँ। कबीरदास जी कहते हैं कि हे साधुओ ! भगवान् तो केवल विश्वास में रहते हैं, विश्वास के द्वारा ही भगवान् की प्राप्ति सम्भव है।

मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे मैं तो तेरे पास में ।
ना तीरथ में, ना मूरत में, ना एकांत निवास में ॥
ना मंदिर में, ना मस्जिद में, ना काशी-कैलाश में ।
ना मैं जप में, ना मैं तप में, ना मैं व्रत-उपवास में ॥
ना मैं किरिया-करम में रहता, ना ही योग-संन्यास में ।
खोजी होय तुरत मिल जाऊँ, एक पल की तलाश में ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, मैं तो हूँ विश्वास में ॥

कौन ठगवा-नगरिया लूटल हो

कौन ठग नगरी को लूट रहा है अर्थात् मृत्यु आ गयी है और शरीर रूपी नगरी को नष्ट कर रही है, मरने के बाद चन्दन की लकड़ी का विमान (अर्थी) बनायी गयी और उस पर मुर्दे को लिटा दिया गया। हे सद्गुरु रूपी सखी ! मेरी रक्षा करो, मुझसे ईश्वर रूठ गया है। चार आदमी अर्थी को कंधे पर रखकर ले चले और शव का दाह संस्कार किया गया। चारों ओर से अग्नि प्रज्वलित होकर मुर्दे को जलाने लगी, यमराज जीवात्मा को लेने के लिये आ गए, उन्हें देखकर भय वश आँखों से आँसू बहने लगे। कबीरदास जी कहते हैं – हे साधुओ ! इस प्रकार संसार से एक दिन तुम्हारा रिश्ता टूट जाएगा।

कौन ठगवा-नगरिया लूटल हो ।
चंदन काठ का बिना हिंडोलना, तापर दुलहिन सूतल हो ।
सुनहु सखी मेरी मांग संवारो, मोते दुलहा रूठल हो ।
चार जना मिल कांधा दीनन, चहुंदिस आगि ऊठल हो ।
आये जमराज पलंग चढ़ि बैठे नैनन अंसुवा छूटल हो ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, जगसों नाता टूटल हो ॥

हरि जननी मैं बालक तोरा

हे हरि ! तुम मेरी माँ हो और मैं तुम्हारा बालक हूँ, अतः तुम मेरे अवगुणों को क्षमा क्यों नहीं कर देती हो? संसार में बेटा कितना भी अपराध क्यों न करे लेकिन माँ अपने मन में ध्यान नहीं देती। बाल्यावस्था में छोटा सा बालक माता के बाल पकड़कर उसे यदि मारता है तो भी माता उसका बुरा नहीं मानती है। कबीरदास जी कहते हैं कि मेरी बुद्धि में एक विचार आता है कि जब बालक दुःखी होता है तो माँ को भी दुःख होता है अतः यदि मैं दुःखी हूँ तो मेरी सच्ची माँ (प्रभु) को भी दुःख होता होगा।

हरि जननी मैं बालक तोरा काहे न अवगुण बकसहु मोरा ।
सुत अपराध करै दिन केते जननी के चित रहें न तेते ॥
कर गहि केस करै जो घाता तऊ न हेत उतारै माता ।
कहै 'कबीर' एक बुद्धि विचारी बालक दुःखी दुःखी महतारी ॥

नैहरवा हमका न भावै

ये संसार रूपी पीहर अब मुझे अच्छा नहीं लगता है। भगवान् का धाम सर्वोच्च और सबसे अधिक आनन्दमय है। वहाँ पर प्राकृत जगत में दिखने वाले भौतिक चन्द्रमा, सूर्य, वायु और जल नहीं है (वहाँ की सृष्टि दिव्य चिन्मयी है) उस धाम तक मुझ जीवात्मा का सन्देश कौन पहुँचायेगा, मेरी पीड़ा को मेरे प्रभु को कौन बताएगा। माया मुझे भक्ति के मार्ग पर आगे नहीं चलने देती है, टाँग खींचती है। संसार के लोग निन्दा करते हैं। हे सखी ! मैं किस विधि से भगवान् के धाम जाऊँ, हृदय में विरह की ज्वाला धधक रही है, साथ ही संसार के विष रूपी विषय भी मुझे हर समय अपने प्रलोभन में बाँधकर फँसाए रखते हैं। बिना सद्गुरुदेव के इस संसार में अपना कोई नहीं है जो भगवान् के मार्ग पर चलने के लिए मार्ग दर्शन करे। कबीरदास जी कहते हैं – अरे साधुओ, स्वप्न में भी कभी प्रियतम भगवान् की प्राप्ति नहीं होती है, उनके विरह में मेरे हृदय में जो पीड़ा है उसे कौन दूर करेगा?

नैहरवा हमका न भावै ।
सांई की नगरी परम अति सुंदर जंह कोई जाय न आवै ॥
चांद सूरज जंह पवन न पानी को संदेस पहुंचावै ।
दरद यह सांई को सुनावै ॥
आगे चलौ पंथ नहिं सूझे पीछे दोष लगावै ।
किहि विधि ससुरे जाऊं मेरी सजनी विरहा जोर जनावै ॥
विषै रस नाच नचावै ।
बिन सतगुरु अपनो नहिं कोई, जो यह राह बतावै ॥
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो ।
सुपने न पीतम पावै तपन यह जिव को बुझावै ॥

पाड़े भली कथा कहि जानें

पंडित जी कथा करना बहुत अच्छी तरह जानते हैं, दूसरों को तो परमार्थ का उपदेश करते हैं और स्वयं स्वार्थ में डूबे रहते हैं। जिस प्रकार दीपक के प्रकाश

पाड़े भली कथा कहि जानें ।
औरन परमारथ उपदेशे, आप स्वार्थ लपटानें ॥
ज्यों दीपक घर करत उजेरो, निज तन तम सन ठानें ॥
महिषी क्षीर स्त्रवे औरन को, आप भुसहिं रूचि मानें ॥
श्रोता गोता क्यों न खावें, आचार्य फिरै भुलानें ॥
हित की कहत लगत अनहित की, रज राजस में सानें ॥
कहत 'कबीर' बिना रघुबीरहिं, यह पीरहिं को जानै ॥

से घर में उजाला हो जाता है, अँधेरा दूर हो जाता है लेकिन दीपक के नीचे सदा अन्धकार बना रहता है। भैंस दूसरों के लिये बहुत उत्तम दूध देती है किन्तु स्वयं भूसा खाना ही उसे अच्छा लगता है। (इसी प्रकार से आजकल के कथावाचकों का हाल है) जब ये कथावाचक आचार्य माया-मोह में फँसे हैं तब भला श्रोता माया के सागर में क्यों नहीं डूबेंगे? वे माया से कैसे छूट सकते हैं? हित का उपदेश करते हैं लेकिन उससे लोगों का नुकसान होता है क्योंकि उपदेशक लोग रजोगुण की वृत्तियों से घिरे हुए हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि कलिकाल में इस दुःखद स्थिति को भगवान् के सिवा और कौन जान सकता है?

जनम तेरो बातों ही बीत गयो

जनम तेरो बातों ही बीत गयो, तैने कबहुं न कृष्ण कहयो ॥
पांच बरस का भोला भाला अब तो बीस भयो ।
मकर पचीसी माया कारन, देस विदेस गयो ॥
तीस वरस को अब मति उपजी, लोभ बढ़यो नित नयो ।
माया जोरी लाख करोरी, अबहूं न तृप्त भयो ।
वृद्ध भयो तब आलस उपज्यो, कफ नित कंठ रहयो ।
सतसंगति कबहूँ नहिं कीनी, विरथा जनम गयो ।
यह संसार मतलब का लोभी, झूठो ठाठ रच्यो ।
कहत 'कबीर' समझ मन मूरख, क्यों तू भूल गयो ॥

अरे जीव, तेरा जन्म संसार की कुकथाओं में व्यर्थ ही बीत गया। तूने जीवन में कभी भी कृष्ण नाम नहीं लिया। पाँच वर्ष की उम्र में तो भोला-भाला, निर्मल चित्त वाला बालक था, विषयों से बिलकुल दूर था लेकिन बीस वर्ष से पचीस वर्ष की अवस्था को मकर पचीसी कहते हैं। जैसे मगर आदमी को निगल जाता है वैसे ही इस उम्र में मनुष्य माया से ग्रसित होकर देश-देशांतर में घूमता है और विषय भोगों में पूरी तरह डूब जाता है। तीस वर्ष की अवस्था में उसका लोभ जाग्रत हो जाता है और धन कैसे कमाया जाय, इसी तिकड़म में लगा रहता है। लाखों-करोड़ों रुपयों का मनुष्य संग्रह कर लेता है फिर भी उसको संतोष नहीं होता और अधिक धन अर्जित करना चाहता है। इसी क्रम में उसकी युवावस्था बीत जाती है और वृद्धावस्था आ जाती है, वृद्ध होने पर चित्त में आलस्य उत्पन्न हो जाता है, गला कफ से भर जाता है (शरीर को अनेक रोग घेर लेते हैं)। तूने कभी महापुरुषों का सत्संग तो किया नहीं और मनुष्य जन्म को व्यर्थ ही गँवा दिया, यह संसार केवल स्वार्थ का साथी है, सब ओर झूठा माया जाल फैला हुआ है। कबीरदासजी कहते हैं – अरे मूर्ख मन, अब भी होश में आ जा, तू भगवान् के नाम को क्यों भूल गया?

माया महा ठगिनी हम जानी

मैं माया के स्वरूप को भली-भाँति जान गया हूँ कि यह महा ठगिनी है। यह तीन गुण (सत्त्व, रज, तम) की फाँसी लेकर और मीठी वाणी बोलकर जीव को बंधन में जकड़ देती है। (इस माया के विविध रूप हैं) भगवान् विष्णु के पास यह लक्ष्मी रूप से स्थित है तथा शिवजी के भवन में भवानी रूप से विराजती है। योगी के पास योगिन रूप में और राजा के महल में रानी बनकर रहती है। मंदिर में माया मूर्ति रूप से स्थित हो जाती है। पुजारी देव मूर्ति के माध्यम से धन का व्यापार करने में लगे रहते हैं। तीर्थ स्थानों में माया जल रूप से गंगा-यमुना के रूप में बहने लगती है और पण्डे लोग तीर्थ यात्रियों से गंगा मैया के नाम से धन-संग्रह करने में लगे रहते हैं। धनवान के पास माया हीरा-मोती के रूप में उपस्थित हो जाती है और निर्धन के पास कानी कौड़ी के रूप में आ जाती है। कबीरदासजी कहते हैं - हे साधुओ ! माया की कथा अकथनीय है, इसका वर्णन नहीं हो सकता।

माया महा ठगिनी हम जानी ॥
तिरगुन फांसि लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी ।
केशव के कमला है बैठी शिव के भवन भवानी ।
जोगी के जोगिन है बैठी राजा के घर रानी ।
मंदिर में मूरत है बैठी तीरथ में भई पानी ।
काहू के हीरा है बैठी काहू के कौड़ी कानी ।
कहत 'कबीर' सुनों भाई साधो ये सब अकथ कहानी ॥

हम न मरैं मरिहैं संसारा

कबीरदास जी कहते हैं कि मैं नहीं मरूँगा बल्कि यह संसार ही मरेगा, मुझे तो जीवनाधार भगवान् मिल गये हैं। मेरे मन में यह विश्वास है कि अब मैं नहीं मरूँगा। जो लोग राम को नहीं जानते उनसे प्रेम नहीं करते, वे ही मृत्यु को प्राप्त होंगे। शाक्त पंथ के अनुयायी भोगों की कामना से शक्ति की आराधना करते हैं, परिणाम में विषयासक्त हो जाते हैं। ऐसे भोगी शाक्त ही मृत्यु का ग्रास बनेंगे जबकि वैष्णव सन्त अमर हो जायेंगे क्योंकि वे जी भर कर राम नाम रूपी रसायन का पान करते हैं। यदि श्री हरि की मृत्यु होती है तब मेरी भी मृत्यु होगी और श्री हरि की मृत्यु नहीं होती है तो मेरी मृत्यु क्यों होगी?

हम न मरैं मरिहैं संसारा हम को मिला जियावन हारा ॥
अब न मरौं मरनै मन माना, तेई मरैं जिन राम न जाना ।
साकत मरैं संत जन जीवैं, भरि-भरि राम रसायन पीवैं ।
हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं, हरि न मरैं हम काहे कूं मरिहैं ।
कहै 'कबीर' मन मनहिं मिलावा, अमर भये सुख-सागर पावा ।

कबीरदासजी पुनः कहते हैं कि मैंने अपने मन को प्रभु के सच्चिदानन्दस्वरूप में तन्मय कर दिया है, अतः मैं परमानन्द के सागर को प्राप्त करके अमर हो गया हूँ।

रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार

रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार ।
सुरपुर लूटा नागपुर लूटा तीन लोक मचा हाहाकार ।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारदमुनि के परी पिछार ।
सिंगी की मिंगी करि डारी, पारासर के उदर विदार ।
कनफूंका चिदवासी लूटे, लूटे जोगेस्वर करत विचार ।
हम तो बच गये साहब दया से, शब्द डोर गहि उतरे पार ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, इस ठगनी से रहो हुसियार॥

राम की दुल्हिन (बहिरंगा शक्ति) माया ने सारे संसार को लूट रखा है। इसने देवलोक को जीत लिया, नागलोक जीता, तीनों लोकों के ऊपर माया की दिग्विजय से हाहाकार मच गया है। माया ने ब्रह्मा जी को पराजित कर दिया, महादेव जी को पराजित किया और देवर्षि नारद का तो बुरा हाल कर दिया (उन्हें विश्वमोहिनी की आसक्ति के कारण वानर मुख मिला)। स्त्री शब्द तक से अपरिचित श्रृंगी ऋषि को माया ने धूल में मिला दिया। (श्री हरि की इच्छा से) पाराशर ऋषि का भी मायारूपिणी (सत्यवती) से संपर्क हुआ। शिष्य के कान में मन्त्र देने वाले दीक्षा गुरुओं तथा चिद में विहार करने वाले शाब्दिक ज्ञानियों को भी माया ने लूट लिया एवं बड़े-बड़े योगीराज भी माया के चक्कर में आकर मायिक प्रपंच का विचार करने लगे। कबीर दास जी कहते हैं कि हम तो प्रभु की कृपा के बल से, सत्संग रूपी रस्सी को पकड़कर भगवन्नाम के आश्रय से इस माया से बच गये। हे साधुओ ! इस ठगिनी माया से सदा सर्वदा सावधान रहना।

कुछ लेना न देना मगन रहना

कुछ लेना न देना मगन रहना ॥
पांच तत्व का बना पींजरा यामें बोलै मेरी मैना ।
तेरा सांई तुझ में रहत है सखी खोल देखै नैना ।
गहरी नदिया नाव पुरानी खेवटिया से मिले रहना ।
कहत 'कबीर', सुनो भाई साधो गुरु के चरन में लिपट रहना ॥

मुझे इस नश्वर जगत से कोई प्रयोजन नहीं है, मैं तो सदा अपने प्रभु के आनन्द में मग्न रहता हूँ। यह शरीर पंचतत्त्वों का बना एक पिंजरा है जिसमें जीवात्मा रूपी मैना निवास करती और बोलती है। अरी सखी जीवात्मा ! आँख खोलकर देख (प्रेम और ज्ञान की दृष्टि से देख) तेरा स्वामी भगवान् तेरे

साथ ही रहता है। माया रूपी नदी अत्यन्त गहरी है और तेरी शरीर रूपी नाव अत्यन्त पुरानी (वृद्धावस्था) को प्राप्त हो चुकी है अतः इस नाव के खेवनहार सद्गुरुदेव से सदा प्रेम बनाये रखना। कबीरदास जी कहते हैं कि हे साधु ! सदा अपने सद्गुरु के चरणों का आश्रय ग्रहण किये रहना।

प्रेमनिधि हित मुहम्मद बने

प्रेमनिधि हित मुहम्मद बने ।
हरि भक्तन में संगी बाबा बहुरंगी-बहुरंगी ।
कुरता टोपी हाथ में छड़िया परवाना है जंगी ।
अपने जन के कारण स्वामी बन गए आप फिरंगी ।
यमुना में कूदि कालिया नाथ्यो, फन पर बाजत पुंगी ।
कदम वृक्ष से ऐसे कूदे जैसे, लंक कूदी बजरंगी ॥
बलि के खातिर है प्रभु ब्राह्मण तीन पैर भू मंगी ।
छल-बल करके लिए बचन में, हो गए लंब तड़ंगी ॥
भाई बंधु अरु कुटुम कबीलो, कोउ न जाय तेरो संगी ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो हरि न भजै सो भंगी ॥

भगवान् अपने भक्तों की सहायता के लिए अनेकों रूप बना लेते हैं। एक बार भक्त प्रेमनिधि के लिये प्रभु इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद साहब बने। शरीर पर कुर्ता और सिर पर टोपी धारण करके हाथ में छड़ी ले ली। अपने भक्त की रक्षा के लिये भगवान् मुसलमान पैगम्बर बन गये। ब्रज में कालियनाग के विष से ग्वाल-बालों और गायों की रक्षा के लिये आप यमुना जी में कूद पड़े और कालिय नाग को नाथकर उसके फनों पर नृत्य किया। ठाकुर जी कदम्ब के वृक्ष से यमुना जी में ऐसे कूदे जैसे हनुमान जी ने लंका जाने के लिए समुद्र के ऊपर छलांग लगाई थी। राजा बलि के लिए प्रभु ने वामन अवतार ग्रहण कर तीन पग भूमि दान में माँगी। प्रभु ने बलि के साथ छल किया, माँगते समय तो वामन (छोटे) रूप में थे और जब बलि ने दान देने का वचन दिया तो विशाल रूप धारण कर लिया। हे जीवो ! इस संसार में तुम्हारे भाई-बन्धु और परिवार के सगे सम्बन्धी मरने के बाद परलोक में साथ नहीं जायेंगे। कबीरदास जी कहते हैं कि साधुओ ! जो श्री भगवान् का भजन नहीं करता वह तो अत्यन्त ही नीच है।

साधो जग कामिनि ऐसी रे

कबीरदास जी कहते हैं - साधुओ ! जगत में कामिनी का स्वरूप ऐसा है कि चाहे राजा हो, चाहे दरिद्र हो सभी के घर में स्त्री बाघिन बनकर बैठी है (गृहस्थों के घर में स्त्री की ही चलती है, पति को स्त्री के अनुकूल होकर चलना पड़ता है) अगर किसी को वैराग्य हो गया और वह घर-गाँव

साधो जग कामिनि ऐसी रे ।
राजा रंक सभी के घर में बाधिनि है के बैठी रे ॥
बस्ती छाँड़ि करै बनवासा चाबत सूखे पाता रे ।
दांव परे तिनहुँ को मारै छाती पर दै लाता रे ॥
ग्यानी गुनी सूर औ पंडित ये तो सबै सयाने रे ।
सूधे होय परै फाँसी में युवती हाथ बिकाने रे ॥
तीन लोक मँह काहू न छाड़े, दाबि दाढ़ हर मारै रे ।
हरिदास हरि सुमिरन लागे तब भगवंत उबारे रे ॥

आदि का त्याग कर वनवास करता है, सूखे पत्ते खाता है लेकिन अगर वहाँ भी सावधान नहीं है, प्रमाद कर बैठा तो स्त्री रूपिणी माया वन में भी आकर उस त्यागी साधु के वैराग्य को नष्टकर, उसे भोग में पटककर सर्वनाश कर देती है। ज्ञानी, गुणवान, शूर और पंडित ये सब तो चतुर होते हैं लेकिन विवेक का यदि त्याग कर दें तो प्रमादवश ये भी माया की फाँसी में बँधकर युवती के हाथ के खिलौना बन जाते हैं। तीनों लोकों में स्त्री रूपिणी माया ने आज तक किसी को नहीं छोड़ा, अपने प्रभाव में लेकर उसे धूल में मिला दिया। लेकिन भगवान् के दास जब भगवान् का स्मरण-भजन आदि करते हैं तो भगवान् स्त्री रूपिणी माया से उनकी रक्षा करते हैं और उनका कल्याण होता है।

मोरा श्याम निकस गयो मैं न लड़ी थी

मृत्यु आने पर जीवात्मा शरीर छोड़कर चली गयी, मैंने कोई विरोध नहीं किया। सदा साथ रहने वाले पंच तत्त्व भी छोड़कर चले गये जबकि मैंने कुछ नहीं कहा। 'कारण और सूक्ष्म' शरीर

मोरा श्याम निकस गयो मैं न लड़ी थी ।
पांच सखी मेरी संग की सहे ली सांची कहूं मैं कुछ न कही थी ।
न कछु बोली न कछु चाली ओढ़े दुपट्टा अकेली पड़ी थी ॥
शीश महल के दस दरवाजे ना जाने कौन खिड़की खुली थी ॥
कहत 'कमाली' कबीर की बेटी या ब्याही से कुंवारी भली थी ॥

रूपी दुपट्टा ओढ़कर अकेली पड़ी थी, मैं कुछ भी नहीं बोली थी। स्थूल शरीर के दस द्वारों में पता नहीं कौन-सा द्वार खुला था और जीवात्मा निकल गयी। कबीरदास जी की बेटी कमाली जी कहती हैं कि संसार में मृत्यु के बाद सभी प्रियजनों से वियोग हो जाता है, सम्बन्ध छूट जाता है; इससे अच्छा तो यही है कि किसी से सम्बन्ध न रखा जाए।

चेत करो बाबा बिलैया मारै मटकी

अरे साधुओ ! सावधान हो जाओ, माया रूपी बिल्ली भक्ति रूपी मटकी को फोड़ने के लिये तैयार खड़ी है; ये ब्रह्मा पर आक्रमण कर चुकी है, महादेव जी को पराजित कर चुकी है। नारद जी को माया ने विश्वमोहिनी के रूप में सभा के बीच उनका मान मर्दन किया। श्रंगी ऋषि को माया ने रौंद डाला और दुर्वासा जी के मन पर भी अपना दुष्प्रभाव डाला। यह माया ज्ञानियों और ध्यानियों को पराजित कर चुकी है, कथावाचक पण्डितों का माया ने पुराण आदि का ज्ञान हर

चेत करो बाबा बिलैया मारै मटकी ।
ब्रह्मा पै झपटी, शंकर पै झपटी नारद जी को सभा बीच पटकी ।
श्रृंगी कै मिंगी करि डारी दुरवासा के मनहिं मन खटकी ।
ज्ञानी पै झपटी और ध्यानी पै झपटी पंडित जी कै पुरान लै सटकी ।
कहत 'कबीर' एक दिन मोह्र पै झपटी कासी से लैकै मगह बीच पटकी ।
सतगुरु शरण नाम की आसा तिनकी और माया कबहुँ नहिं लटकी ॥

लिया। कबीरदास जी कहते हैं कि एक बार इस माया ने मेरे ऊपर भी हमला किया और मुझे काशी निवास छुड़ाकर मगहर में भेज दिया। जो मनुष्य सद्गुरुदेव की शरणागति में है और एकमात्र भगवन्नाम का जिन्होंने आश्रय ले लिया है, उन पर माया कभी भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकती।

तू तो राम सुमर जग लड़वा दे

तुम तो राम का भजन करते रहो और सांसारिक लोग यदि लड़ाई-झगड़ा करते हैं तो उन्हें करने दो (तुम उनसे दूर रहकर आराधना में लगे रहो)। सफेद कागज पर काली स्याही से लोग

तू तो राम सुमिर जग लड़वा दे ।
कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वाको पढ़वा दे ॥
हाथी अपनी गैल चलत है, कुकर भुसत वाको भुसवा दे ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो! नरक पड़त वाको पड़वा दे ॥

लिखते हैं और लिखी हुई पुस्तकों को पढ़ते हैं, जो ऐसा करते हैं उन्हें करने दो (जो केवल पोथी के पंडित बन रहे हैं, दूसरों को उपदेश देने के लिए पढ़ रहे हैं, लिख रहे हैं और स्वयं उनके आचरण में शास्त्रीय ज्ञान नहीं है, ऐसे लोगों को उनके रास्ते पर चलने दो, तुम उनका अनुकरण मत करो)। किसी गली से होकर यदि हाथी गुजरता है तो कुत्ते उस पर भौंकना शुरू कर देते हैं लेकिन कुत्तों के भौंकने से हाथी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह तो अपनी मस्ती में चुपचाप चलता जाता है (भगवान् की भक्ति करने वालों की दु ष्ट लोग निन्दा करते हैं लेकिन हाथी की तरह उनकी बिल्कुल

परवाह नहीं करना चाहिए, वे भक्त का कुछ भी नुकसान नहीं कर सकते हैं)। कबीरदास जी कहते हैं – हे साधुओ ! यह संसार नरक के रास्ते पर जा रहा है तो उसे जाने दो (क्योंकि यह उचित शिक्षा को न ही जानता है और न जानना या सुनना चाहता है)।

रहना नहिं देस बिराना है

रहना नहिं देस बिराना है ।
यह संसार कागज की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है ।
यह संसार काँटे की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है ॥
यह संसार झाड़ औ झाँखर, आग लगे बरि जाना है ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है ॥

यह संसार सदा रहने या रुकने का स्थान नहीं है क्योंकि यह तो पराया है, माया के गुणों से युक्त है। जैसे कागज की पुड़िया पर पानी की बूँदें पड़ने पर (पानी से भीगने पर) वह गल जाती है उसी प्रकार यह संसार भी नाशवान है। जैसे काँटे के जंगल में कोई फँस जाए तो निकल नहीं सकता, काँटों में फँसकर घायल हो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार संसार के कँटीले मार्ग में कहीं सुख नहीं है, केवल दुःख है, केवल दुःख भोगते-भोगते ही सुख की आशा में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यह संसार कँटीली झाड़ियों का जंगल है जो आग लगते ही जल जाएगा। प्रलय की अग्नि सारे संसार को नष्ट कर देती है। इसीलिये कबीरदास जी कहते हैं कि हे साधुओ ! ऐसे भयंकर दुःखमय संसार से बचने के लिए एकमात्र सद्गुरुदेव के चरणों का ही आश्रय लेना चाहिए।

नामदेव जी

विनती सुन जगदीस हमारी

नामदेव जी कहते हैं – हे जगदीश्वर ! मेरी प्रार्थना सुनो, मैं तुम्हारा दास हूँ, मुझे केवल तुम्हारी ही आशा है, अतः हे मुरारी ! मेरी ओर कान करके ध्यान से मेरी पुकार सुनो। हे दीनानाथ ! मैं अत्यन्त दीनता से तुमको पुकार रहा हूँ, तुम इस मृतक गाय को जीवित क्यों नहीं करते हो? इस गाय के सभी अंग पुष्ट हैं, इसको जीवित करके तुम मेरा यश बढ़ा दो। यदि ब्रह्मा जी ने इस गाय के कर्म में (इसके भाग्य में) जीवित होना नहीं लिखा तो भी हे जीवनदाता प्रभु ! इस गाय को मुझ नामदेव की आयु दे दो।

विनती सुन जगदीस हमारी ।
तेरो दास आस मोहि तेरी, इत करु कान मुरारी ॥
दीनानाथ दीन है टेरूँ, गाइहिं क्यों न जिवावो ।
आछे सबै अंग हैं याके, मेरे यशहि बढ़ावो ॥
जो कहूँ याके कर्महि में नहिं जीवन लिख्यो विधाता ।
ता 'नामदेव' की आयुरदा सों, होहु तुमहिं प्रभु दाता ॥

हीन है जाति मेरी जादवराई

नामदेव जी कहते हैं कि हे यादवराय ! मेरी जाति निम्न है। भीषण कलिकाल में मुझे यहाँ क्यों भेज दिया आपने। मंदिर में तो पखावज की ताल पर दिव्य कीर्तन हो रहा है और भक्तजन पंक्तिबद्ध होकर नृत्य कर रहे हैं। इसलिए हे विठ्ठलनाथ ! मुझ नीच नामदेव की निम्न स्तर की भक्ति (मेरा कीर्तन) आपको भला क्यों अच्छा लगेगा। हे पण्डरपुर के स्वामी ! मेरी पुकार सुनिए और कृपा करके नामदेव को दर्शन दीजिए।

हीन है जाति मेरी जादवराई, कलि के नामा इहा, काहे को पठाय ।
ताल पखावज बाजै पातुरि नाचे, हमरी भगति विट्ठल काहे को राचे ।
पण्डर प्रभु जू वचन सुनीजै, नाम देव कहँ दरसन दीजै ।

उठि भाई नामदेव परे ह्वै जाइ

मंदिर से अपमानित करके बाहर निकाल दिए जाने पर कबीरदास जी प्रकट होकर नामदेव जी से बोले – अरे भाई नामदेव ! यहाँ से चलो, यहाँ तो मंदिर में ब्राह्मण और वैश्य उत्तम जाति के लोगों का सम्मान है । यहाँ तुम्हारे जैसे गरीब और निम्न जाति वाले का सम्मान नहीं है । कबीरदास जी की बात सुनकर नामदेव जी कमरी उठाकर चलने को तैयार हो गये और मंदिर के पिछले हिस्से में जाकर बैठ गये और पाँवों में घुँघरू बाँधकर और हाथों में करताल लेकर नामदेव जी गोपाल जी का गुणगान करने लगे । मंदिर के ऊपर ध्वजा फहरा रही थी, उसी समय भगवान् ने मंदिर को घुमा दिया और नामदेव जी के सम्मुख कर दिया । नामदेव जी ने श्री हरि के दर्शन का लाभ लिया । भगवान् ने उनकी बाँह पकड़कर अपने पास बैठा लिया तथा उन्हें हृदय से लगा लिया, दोनों भक्त और भगवान् प्रेम में घुल-मिलकर एक हो गये । नामदेव और विट्ठलनाथ भगवान् का यह अद्भुत प्रेम देखकर कबीरदास जी आश्चर्य चकित हो गये ।

उठि भाई नामदेव परे ह्वै जाइ, इहाँ दूबे तिवारी बैठें आइ ।
ब्राह्मण बनियाँ उत्तम लोग, इहाँ नहीं नामदेव तुम्हरो संयोग ।
नामदेव कमरी लई उठाय, मंदिर पाछे बैठ जाय ।
पाँयनि घुँघरु हाथनि ताल, नामदेव गावैं गुण गोपाल ।
मंदिर ऊपर ध्वजा फरहरै, उलटि द्वार नामा तन करै ।
'नामदेव' हरि दरसन पाय, बाँह पकरि ढिंग लै बैठाये ।
दोऊ हिलमिल एकै भये, दास कबीर अचम्भे रहे ।

ये आये मेरे लम्बक नाथ

देखो, आज मेरे प्रभु लम्बक नाथ के रूप में पधारे हैं । इनके पाँव धरती पर हैं और स्वर्ग (आकाश) तक फैला हुआ इनका मस्तक है । इनके हाथ भी योजन भर लंबे हैं । भगवान् शंकर और सनकादिक मुनिगण भी इनकी महिमा का पार नहीं पा सकते । आज मेरे लम्बक नाथ प्रभु के साथ उन्हीं के सदृश्य उनके सखा भी साथ में हैं । नामदेव जी कहते हैं – हे प्रभु ! आप तो अन्तर्यामी हैं, कृपा करके मुझे सनाथ करिये (मेरे सहायक बन जाइये) ।

ये आये मेरे लम्बक नाथ ।
धरती पांव स्वर्ग लौं माथो, योजन भरि-भरि हो नाथ ।
सिव सनकादिक पार न पावैं, तैसेइ, सखा विराजत साथ ।
'नामदेव' प्रभु अन्तर्यामी, कीन्यो मोहिं सनाथ ॥

लोग परोसी पूछैं रे नामा

पड़ोसी लोग नामदेव से पूछते हैं कि तुमने यह छान किससे छवाई है? तुमसे ज्यादा मजदूरी हम देंगे, छान छाने वाले के बारे में जल्दी ही बताओ, वह कौन है? नामदेव जी ने उत्तर दिया – अगर कोई ऐसी छान छवाना चाहता है तो 'मजदूर' इसका दाम धन नहीं बल्कि 'प्रेम की मजदूरी' माँगता है? अपने भाई-बंधुओं और सगे सम्बन्धियों से नाता तोड़ लो तब वह मजदूर स्वयं ही छान छाने को आ जाएगा। इस छान को छाने वाले मजदूर ने ऋषियों को छोड़कर भीलनी शबरी के जूठे फल प्रेम से खाये, उसने दुर्योधन के मेवा-मिष्ठानों को त्यागकर विदुर जी के प्रेम युक्त साग को खाया; उसी ने यह सोने की छान छाई है और कमल पत्रों के द्वार बनाए हैं और मेरे साथ प्रेम का सम्बन्ध जोड़ लिया है। ऐसे जिन प्रेममय गोविन्द ने यह छान छाई है, नामदेव उन्हीं का गुणगान करता है।

लोग परोसी पूछैं रे नामा, किन यह छान छबाई ।
तो ते अधिक मजूरी देहों, बेगिहिं देहि बताई ।
बैठिया प्रीति मजूरी मांगे, जो कोउ छानि छबावै ।
भाई बंधु सगे सों तोरै, बैठिया आपुहि आवै ॥
जूठे फल शबरी के खावै ऋषि स्थान बिसरावै ।
दुर्योधन की मेवा त्यागी साग विदुर घर खावै ॥
कंचन छानि पद्म पट दीने, प्रीति की गांठ जुराई ।
गोबिन्द के गुन भनै 'नामदेव', जिन यह छानि छबाई ॥

राम तजि और जानूं हौं न

एक बार श्री नामदेव जी बैठकर भगवान् का भजन कर रहे थे, उसी समय एक मुग़ल ने इन्हें पकड़कर इनके सिर पर मोट रख दी और स्वयं घोड़े पर सवार होकर चला, थोड़ी दूर जाने पर इन्हें सन्त कबीरदास जी मिले और उन्होंने पूछा कि यह क्या? उस समय श्री नामदेव जी ने यह पद गाया था – मैं तो राम को छोड़कर और किसी को नहीं जानता हूँ। भजन करने मैं बैठा था, ऐसे समय में प्रभु के सिवा मुझे और कौन पकड़ेगा। इस समय का प्रभु का वेष बड़ा ही सुन्दर है। अयोध्या नगर में एकमात्र यही तो मुगल (मुसलमान) वेष में हैं। काले

राम तजि और जानूं हौं न, भगति करत बैठि पकरै कौन ।
खूब प्रभु की तस्बीह खूब है सुगल, अयोध्या नगर में यही है मुगल ।
कालो घोरा जरद पलान, ताज कुलह सोहै रहमान ।
कहत 'नामदेव' सुनो कबीर, चरन गहो एही रघुबीर ॥

घोड़े पर जड़ाऊ जीन है, सिर पर ताज शोभायमान है इस यवन के। नामदेव जी कबीरदास जी से कहते हैं कि इनके चरण पकड़िये, यह कोई और नहीं मुग़ल वेष में साक्षात् प्रभु श्री राम हैं।

आये मेरे अंधेरे घर के मदनराय

एक कुत्ते को रोटी लेकर भागते हुए देखकर नामदेव जी कहते हैं – आज मेरे घर रात्रि को अन्धकार में मदनराय श्यामसुन्दर पधारे, ये आटा तो खाते नहीं चक्की को चाटते हैं। झूम-झूमकर मेरे प्रभु जी चलते हैं। उनकी पूँछ ऐसे हिलती है जैसे खेत में जौ की बाल। चूल्हे में तो मेरे प्रभु की सेज है (सूने चूल्हे में जाकर सो जाते हैं)। छींके में मुँह डालकर उसको अपने तेज से देदीप्यमान कर देते हैं। कार्तिक मास में जब प्रभु जी भोग लगाने घर-घर गये तो लोग डंडा हाथ में लेकर इन श्वान रूपी ठाकुर जी को भगाने लगे। मेरे त्रिविध तापों को मिटाने के लिए ही मेरे स्वामी आज कुत्ता बनकर इस रूप में पधारे।

आये मेरे अंधेरे घर के मदनराय ।
चाकी चाटैं चून न खाय ॥
तुरुग रुरुग मेरे प्रभु जी की चाल ।
पूँछ हिलै ज्यों जौ की बाल ॥
चूल्हे मांहि जु प्रभु जी की सेज ।
छींके कीनौ अधिकै तेज ॥
कातिक में मेरे प्रभु जी कौ भोग ।
लै लै लकुट खिजावैं लोग ॥
तीन ताप प्रभु मेटन जोग ।
'नामदेव' स्वामी बन्यो संयोग ॥

नरसी जी

कबीर थारो लागे छे बाप

नरसी जी उलाहना के साथ ठाकुर जी से कहते हैं – कबीर क्या तुम्हारा बाप लगता था – जो उसका जन्म जब अनाथ रूप में हुआ तब उसको एक जुलाहा ले आया और पिता के रूप में उसका पालन-पोषण किया। शबरी क्या तुम्हारी माँ लगती थी जिसके अर्पित किये हुए जूठे फल तुमने वन में खाए। करमाबाई क्या तुम्हारी काकी थी जिसकी खिचड़ी खाने के लिए तुम भागा करते थे जबकि बिना शुद्धता-पवित्रता के ही तुम्हें भोग अर्पित करती थी। तुम यदुवंश शिरोमणि, यदुओं के सम्राट होकर दुर्योधन के छप्पन भोग छोड़कर विदुर जी का साग खाने के लिए उनके घर भाग गये थे। अजामिल क्या तुम्हारा कुटुम्बी था जिसको महापापी होने पर भी तुमने विमान पर बिठाकर वैकुण्ठ भेज दिया। गणिका (वैश्या) क्या तुम्हारे गोत्र की थी, पापिनी होने पर भी तुमने उसका उद्धार कर दिया। तुम तो कुलघाती हो क्योंकि तुमने अपने मामा कंस का स्वयं ही वध कर दिया था, तुम्हारा तो मुख देखना भी पाप है। महाभारत के युद्ध में तुमने कौरवों और पाण्डवों को आपस में लड़ाकर मरवा दिया। उत्तरा के गर्भ में प्रवेश करके तुमने ब्रह्मास्त्र से परीक्षित की रक्षा की। तुमने परम

कबीर धारो लागे छे बाप ।
बालद लायो आपुहि आप ।
सबरी थारी लगैछी माय ।
ताको जूठा बन फल खाय ।
करमा धारी काकी धाय ।
ताकी खीच बिना सुधि खाय ।
जादव कुल कुल को राजा घयो ।
जेवन साग विदुर घर गयो ।
अजामिल थारो कुटुमी जान ।
ताकौ तुम जो दियो विमान ।
गनिका तेरी गोतिन होय ।
ताको शीश नवायो तोय ।
तुम कुल घाती मातुल आप ।
थारो मुख देख्या नो पाप ।
कौरव-पांडव मारि लराये ।
गर्भ परीक्षित भये सहाय ।
थे हरिचंद शिविर दुख दयो ।
है बामन बलि को धन लयो ।
तेरे अवगुण कहां लो कहौं ।
बिपद परी पद गहौं सहौं ।
जुही नो फूल सूत नो धागो ।
दो दमड़ी न मोल पावी ।
नरसी ने एक हार लै आपना ।
ताहरो बापरो सो जावी ।

धर्म परायण राजा हरिश्चन्द्र और राजा शिवि को दुःख दिया, वामन अवतार लेकर बलि का धन (त्रिलोकी का राज्य) छीन लिया। तुम्हारे अवगुणों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? मेरे ऊपर विपत्ति आ गयी है अतः तुम्हारे चरणों का आश्रय लिया है और तुम्हारे मनमानेपन को, अन्याय को सह रहा हूँ। दो पैसे का जुही का फूल और सूत का धागा तुम्हें मोल नहीं मिल रहा है (केदार राग गाने पर माला टूट कर गिरती थी, लेकिन अब नहीं उसे गिरा रहे हो), नरसी के लिए एक हार गिराने से क्या तुम्हारा बाप मर जाएगा?

चरणदास जी

भक्ति बिना मानुष तन खोवै

अरे जीव ! तू भगवान् की भक्ति बिना मनुष्य जीवन को व्यर्थ में ही नष्ट कर रहा है। मोह निद्रा में क्यों सोता है? शीघ्र ही जाग जा। विषय रूपी प्रबल अग्नि से भागकर अपनी रक्षा कर और संतों से प्रेम कर, जिस प्रकार कोयल अपने अंडे कौवे के घोंसले में रख देती है और कौवे उसे अपना समझकर अण्डों से निकले बच्चों का पालन पोषण करते हैं, लेकिन पंख निकलने पर वे बच्चे कोयलों के समुदाय के साथ उड़ जाते हैं, उसी प्रकार यह शरीर, घर, स्त्री, धन और सांसारिक सुख ये तेरे नहीं, पराये हैं, मृत्यु आने पर तेरा साथ छोड़ देंगे। फिर तू इन्हें अपना मानकर अपना जीवन क्यों नष्ट करता है? संसार की लज्जा, मान-बड़ाई, लौकिक गुण और चतुरता ये सब होली के गन्दे रंगों, गन्दे पदार्थों के समान अत्यन्त ही तुच्छ और त्याज्य हैं। माया-मोह कभी छूटते नहीं हैं, जैसे दुमुंहा नाग जल्दी नहीं मरता है। जैसे बाजीगर अपनी कला में झूठी वस्तुओं को सत्य के समान दिखा देता है। उसी प्रकार संसार में मान-बड़ाई का सुख दिखने में सच होने पर भी बिल्कुल मिथ्या है।

भक्ति बिना मानुष तन खोवै क्यों सोवै उठि जागु रे ॥
विषय अग्नि पर भागि उबरिये साधुन सौं कीजैं अनुराग रे ।
देह गेह दारा सुख संपत्ति ज्यों कोकिल सुत कागु रे ।
लाज बड़ाई गुन चतुराई जैसे फोकट फागु रे ।
माया मोह जियत नहि छूटै जैसे दुमुंहां नागु रे ।
लोक बड़ाई कौ सुख झूठौ बाजीगर कैसो वागु रे ॥

जिन्है हरि भगति पियारी हो

जिन भक्तों को भगवान की भक्ति प्यारी लगती है, वे अत्यन्त आसानी से माता-पिता, स्त्री, पुत्र आदि की आसक्ति का त्याग कर देते हैं। उन्हें संसार के विषय-भोग अत्यन्त नीरस प्रतीत होते हैं। उनके लिए निंदा और स्तुति समान होती है। हानि-लाभ से उनका कोई प्रयोजन नहीं रहता और संसार में किसी की भी वे आशा नहीं करते। संसार से ऐसे भक्त सदा ही विमुख रहते हैं और गिरधर गोपाल का ही अपने हृदय में सदा ध्यान किया करते हैं। उनका मन सदैव श्रीहरि के चरणों के

स्मरण में तन्मय रहता है और इस प्रकार उनके हृदय में सदा भक्ति और ज्ञान का प्रकाश छाया रहता है। हमारे गुरु श्री शुकदेव मुनि ने हमें यह शिक्षा दी कि भगवत प्रेमी सर्वोच्च अवस्था पर सदा आरूढ़ रहता है। चरणदास जी कहते हैं कि भगवत्प्रेम का गान चारों वेद से अलग है।

जिन्है हरि भगति पियारी हो ।
मात पिता सहजै छूटैं सब छूटैं सुत अरु नारी हो ॥
लोक भोग फीके लागे सब सम अस्तुति औ गारी हो ।
नित हानि लाभ नहि चाहे नेकहु सबहिं आसा हारी हो ॥
जगसूं मुख मोरे रहैं करैं ध्यान गिरधारी हो ।
मनुवां लाग्यो रहै हरि चरनन घट छाई उजियारी हो ॥
गुरु सुकदेव बताई हम कूं प्रेमी की गति भारी हो ।
'चरनदास' चारों वेदन सूं औरे गाने कछु न्यारी हो ॥

मीरा जी

गली तो चारों बंद हुई

चारों तरफ से रास्ते बन्द कर दिए गये हैं, अब मैं अपने श्री हरि से जाकर कैसे मिलूँगी। ऊँचा-नीचा, फिसलन भरा रास्ता है जिस पर पाँव भी नहीं टिक सकता। बड़े यत्न के साथ, सावधानी पूर्वक मैं पाँव रखती हूँ फिर भी बार-बार कदम डगमगा जाते हैं। मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर का महल बहुत ऊँचाई पर स्थित है (भगवान् से मिलने का मार्ग अत्यन्त कठिन है) मुझे इतनी ऊँची चढ़ाई पर चढ़ना बहुत मुश्किल प्रतीत होता है। पिया गिरधारी बहुत दूर हैं, रास्ता कठिन है, प्रेम में बाधाएँ आ रही हैं। हर कोस पर राणा जी ने पहरा बैठा रखा है, थोड़ी-थोड़ी दूरी पर हत्यारे बैठे हुए हैं। हे विधाता ! तूने कैसा विधान रच दिया है, मेरे पिया का गाँव इतनी दूर क्यों बसा दिया? मीरा जी कहती हैं कि मेरे प्रभु गिरधर नागर से मिलने का सुगम उपाय मेरे सद्गुरुदेव ने बता दिया है। उनकी कृपा से युगों से बिछुड़ी मुझको प्रभु ने गले से लगा लिया।

गली तो चारों बंद हुई, मैं हरि सों मिलूँ कैसे जाय ॥
ऊंची-नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय ।
सोच-सोच पग धरुँ जतन से, बार-बार डिग जाय ॥
ऊंचा नीचा महल पिया का, म्हासूँ चढ्यो न जाय ।
पिया दूर पंथ म्हारो झीणो, सुरत झकोला खाय ॥
कोस-कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड-पैंड बटमार ।
हे बिधना कैसी रच दीनी, दूर बसायो म्हारो गाँव ॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु दई बताय ।
जुगन-जुगन से बिछड़ी मीरा, लीनी कंठ लगाय ॥

हे री मैं तो दरद दिवानी

हे सखी ! मैं तो अपने गिरिधारी के विरह की दीवानी हूँ, मेरी इस वियोग पीड़ा को कोई नहीं जानता है। जो कभी घायल हुआ है, वही दूसरे घायल के कष्ट को समझ सकता है। जिस पतिव्रता ने जौहर व्रत किया है, वही दूसरी पतिव्रता स्त्री के जौहर व्रत में अग्नि में जलने के कष्ट को समझ सकती है। सूली की शैया मेरे शयन के लिए बनायी गयी है, अब मैं किस प्रकार सो सकती हूँ, दूसरी

तरफ पिया श्यामसुन्दर की सेज आकाश में है (भगवान् का धाम प्राकृत सृष्टि के परे है) अब उनकी प्राप्ति भला कैसे सम्भव है? मैं तो प्रभु के विरह के कष्ट में वन-वन में भटक रही हूँ, अब तक मेरी पीड़ा दूर करने वाला कोई वैद्य नहीं मिला। मीरा जी कहती हैं कि मेरी पीड़ा तो तभी दूर होगी जब साँवरे कन्हैया ही वैद्य बनकर (अपना दर्शन देकर) मेरी विरह-व्यथा को दूर करेंगे।

हे री मैं तो दरद दिवानी मेरो दरद न जाणै कोय ।
घायल की गति घायल जाणै जो कोइ घायल होय ।
जौहरि की गति जौहरि जानै की जिन जौहर होय ॥
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस विध होय ।
गगन मंडल पर सेज पिया की किस विध मिलणा होय ॥
दरद की मारी वन-वन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोय ।
'मीरा' की प्रभु पीर मिटेगी, जद वैद सांवलिया होय ॥

आली री मेरे नैणां

हे सखी ! (श्याम सुन्दर के विरह में) मेरी आँखों में नींद नहीं आती है। मेरे चित्त में गिरधर गोपाल की माधुरी छवि इस तरह बस गयी है कि हृदय के बीच में आकर अड़ गयी है। कितनी देर से (रात भर जागकर) अपने घर की छत पर खड़ी हुई मैं रास्ता देख रही हूँ कि प्रभु किस मार्ग से आयेंगे, कब आयेंगे? पिया श्री कृष्ण ही मेरे जीवन की रक्षा करने वाले संजीवनी जड़ी हैं, उनके बिना मैं प्राणों को कैसे धारण कर सकती हूँ? मीरा जी कहती हैं कि मैं तो पूरी तरह गिरधारी के हाथ बिक चुकी हूँ लेकिन संसार के लोग मेरी निन्दा करते हैं कि मीरा तो बिगड़ गयी है।

आली री मेरे नैणां बाण पड़ी ।
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ।
कबकी ठाड़ी पंथ निहारुँ, अपने भवन खड़ी ।
कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवन मूल जड़ी ।
'मीरा' गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी ।

कोई कहियो रे प्रभु आवन की

कोई मेरे प्रभु के आने की सूचना मुझे दे, ऐसे प्रभु जो मन को अत्यन्त प्रिय लगते हैं। हे नाथ ! न तो आप मेरे पास आते हैं और न ही पत्र लिखते हैं कि मैं

कोई कहियो रे प्रभु आवन की, आवन की मन भावन की ।
आप न आवै लिख नहिं भेजै, बाण पड़ी ललचावन की ।
ए दोउ नैण कह्यो नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की ।
कहा करुं कछु बस नहिं मेरो, पंख नहिं उड़ जावन की ।
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे, चेरी भई हूं तेरे दांवन की ।

कब आऊँगा। अब तो आपके बिना मेरा मन हर समय आपके लिए लोभातुर बना रहता है। विरह से व्याकुल हुए मेरे नेत्र, दर्शन के बिना मेरे समझाने पर भी संतुष्ट नहीं होते हैं, इन आँखों से सदा आँसुओं की धारा इस प्रकार बहती है जैसे सावन मास की नदी हो। क्या करूँ, मेरे वश में तो कुछ भी नहीं है, मेरे पास पंख नहीं हैं जिससे मैं उड़ कर प्रभु से मिल आऊँ। मीरा जी कहती हैं – हे स्वामी ! मुझे कब मिलोगे, मैं तो हर प्रकार से आपकी दासी हूँ।

मैं जाण्यों नहिं

हे सखी ! मुझे नहीं पता कि प्रभु का मिलन किस उपाय से होगा। मैं एक दिन सो रही थी, मेरे साजन गिरिधारी मेरे घर आये और मुझ अभागिन को सोता देखकर चले गये। अब तो मैं चुनरी को फाड़ दूँगी, गले में कन्था डाल लूँगी, अत्यन्त साधारण वस्त्र पहनकर वैरागिन के वेष में रहूँगी, भौतिक श्रृंगार मैं हटा लूँगी, चूड़ियाँ तोड़ दूँगी, माँग से सिन्दूर हटा लूँगी, आँखों से काजल भी पोंछ लूँगी (क्योंकि मुझे जोगिन का स्वरूप धारण करना है) दिन-रात, हर पल मुझे श्यामसुन्दर के विरह का कष्ट सताता है, एक क्षण को भी बिताना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है। मीरा जी कहती हैं – हे प्रभु ! तुम अविनाशी हो, अबकी बार मुझसे मिलने के बाद कभी भी बिछुड़ना नहीं।

मैं जाण्यों नहिं (हाय सखी री) प्रभु को मिलण कैसे होय री ।
आये मेरे सजना फिर गये अँगना, मैं अभागण रही सोय री ।
फाडूँगी चीर करूँ गल कंथा, रहूँगी वैरागण होय री ।
चुरियाँ फोरूँ मांग बखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोय री ।
निसिवासर मोहि बिरह सतावै, कल न परत पल मोय री ।
'मीरा' के प्रभु हरि अविनासी, मिल बिछुड़ो मत कोय री ।

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ

हे दीनानाथ ! आँख खोलकर देखो, मेरी खबर लो, मैं कब से आपके सामने खड़ी हुई हूँ। राणा जी मेरा शत्रु बन गया है, सबको मैं बुरी मालूम पड़ती हूँ। हे साजन

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कद की खड़ी ।
साजनिया दुसमण होय बैठ्या, सबने लगूँ कड़ी ।
तुम बिन साजन कोई नहीं है, डिगी नाव मेरी समंद अड़ी ।
दिन नहिं चैन रैण नहिं निंदरा सूखूँ खड़ी-खड़ी ।
बाण बिरह का लग्यो हिये में, भूलूँ न एक घड़ी ।
पत्थर की तो अहिल्या तारी, वन के बीच पड़ी ।
कहा बोझ 'मीरा' में कहिये, सौ पर एक घड़ी ।

श्री कृष्ण ! आप के बिना इस संसार में मेरा कोई नहीं है। मेरी नाव भवसागर में डगमगा रही है, दिन में मुझे चैन नहीं मिलता, रात को मुझे नींद नहीं आती है, आप के विरह में खड़ी-खड़ी मैं सूख रही हूँ। मेरे हृदय में विरह का बाण इस तरह चुभ गया है कि एक पल को भी मैं गोविन्द को भूल नहीं सकती। हे नाथ ! आपने वन के बीच में पड़ी हुई पत्थर की शिला (अहिल्या) का तो उद्धार कर दिया लेकिन मुझ मीरा में क्या उससे ज्यादा वजन है जो मेरी सुधि नहीं ली। आपके विरह में एक घड़ी मुझे सौ घड़ी के समान प्रतीत होती है।

आवो मन मोहना जी

आवो मन मोहना जी मीठा मीठा थारा बोल ।
बालपणा की प्रीति रमइया जी, कदे गहि आयो थारो तोल ।
दरसण बिन मोहि जक न परत है, चित म्हारो डांवा डोल ।
'मीरा' कहै मैं भई रावरी, कहो तो बजाऊँ ढोल ।

हे मनमोहन जी ! आओ, तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है। हे रमैया ! बाल्यावस्था से मेरा तुमसे जो प्रेम हुआ उसे तुमने कब तौला (जाँचा-परखा)? तुम्हारे दर्शन के बिना मुझे जरा भी चैन नहीं मिलता है, मेरा चित्त (विरह व्यथा से) सदा संतप्त बना रहता है। मीरा जी कहती हैं कि मैं तो सब प्रकार से तुम्हारी हो गयी हूँ, कहो तो ढोल बजाकर इसकी घोषणा कर दूँ।

तुम्हरे कारण सब सुख छोड़्या

तुम्हरे कारण सब सुख छोड़्या, अब मोहि क्यों तरसावौ हौ ।
बिरह विथा लागी उर अन्तर, सो तुम आय बुझाओ हौ ॥
अब छोड़त नहिं बनै प्रभुजी, हँसकर तुरत बुलावौ हौ ।
'मीरा' दासी जनम-जनम की, अंग से अंग लगावौ हौ ॥

हे नाथ ! तुम्हारे लिए मैंने संसार के सभी सुखों का त्याग कर दिया, फिर अब तुम मुझे क्यों तरसाते हो? मेरे हृदय के भीतर तुम्हारे विरह व्यथा की आग जल रही है उसे तुम अपने दर्शन देकर बुझा दो। हे प्रभु जी ! अब मैं तुमको कभी छोड़ नहीं सकती, मधुर हास्य से हँसकर मुझे तुरन्त अपने पास बुला लो। मीरा जी कहती हैं कि मैं तो जन्म-जन्म की तुम्हारी दासी हूँ। अब तो तन-मन से मेरा आलिंगन करो।

बंसीवारा आज्यो म्हारे देस

हे वंशी वारे कन्हैया ! मेरे देश में आओ, तुम्हारी साँवरी सूरत और अत्यन्त मनोहर वेष है। यह साँवरा कह गया था कि मैं आऊँगा-आऊँगा लेकिन कितने दिन बीत गये, अब तक नहीं आया। दिनों की गणना करते-करते मेरी उँगलियों की रेखा घिस गयी। हे श्याम सुन्दर ! मैं तो अपने उत्पत्ति काल से ही वैरागिन हूँ और मेरा – तुम्हारा प्रेम भी आज का नहीं युगों पुराना है।

बंसीवारा आज्यो म्हारे देस, थारी साँवरी सुरत ब्हालो बेस ।
आऊँ-आऊँ कर गया साँवरा, कर कौल अनेक ।
गणता-गणता घस गइ म्हारी आंगुलियाँ री रेख ॥
मैं बैरागिण आदि की जी, थारे म्हारे कद को सनेस ।
बिन पाणी बिन साबण साँवरा, होय गई धोय सफेद ॥
जोगण होय जंगल सब हेरूँ, तेरा नाम न पाया भेस ।
तेरी सुरत के कारण मैं धर लिया भगवाँ भेस ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, घूँघर वाला केस ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर मिलियाँ दूनो बढ़ै सनेस ॥

हे साँवरे ! साबुन और पानी से धोये बिना ही मैं तो सफेद हो गयी हूँ (प्रेम भक्ति के कारण मेरा चित्त अनादिकाल से निर्मल है) जोगिन बनकर मैंने तुझे वन-वन में ढूँढ़ा लेकिन कहीं भी तेरे नाम और स्वरूप का पता नहीं मिला। तेरे प्रेम में दीवानी होकर मैंने भगवा वस्त्र धारण कर लिया है। तुम्हारे शीश पर मोर पंखों का मुकुट है, सुनहला पीताम्बर शरीर पर शोभा दे रहा है और तुम्हारी घुँघराली केशराशि है। मीरा जी कहती हैं – हे प्रभु गिरधर ! तुमसे मिलन होने पर प्रेम दुगना बढ़ गया।

म्हारे घर आओ प्रीतम प्यारा

परम प्रियतम गिरधर नागर ! मेरे घर में पधारो। मैं अपना तन, मन, धन सर्वस्व तुमको समर्पण कर दूँगी और सर्वात्म भाव से तुम्हारा ही भजन करूँगी। तुम तो अनन्त सद्गुणों से सम्पन्न श्रेष्ठ स्वामी हो लेकिन मेरे हृदय में सारे अवगुण ही अवगुण भरे पड़े हैं। मैं सद्गुणों से शून्य हूँ, कोई भी गुण जानती तक नहीं हूँ ले किन

म्हारे घर आओ प्रीतम प्यारा ।
तन मन धन सब भेंट करुँगी, भजन करुँगी तुम्हारा ।
तुम गुणवंत सुसाहिब कहिये, मोमे औगुण सारा ।
मैं निगुणी कछु गुण नहिं जानूँ तुम छो बगसण हारा ।
'मीरा' कहै प्रभु कब रे मिलोगे, तुम बिन नैण दुखारा ।

तुम अवगुणों (अपराधों) को क्षमा करने वाले हो। मीरा जी कहती हैं – हे प्रभु! तुम मुझे कब मिलोगे, तुम्हारे दर्शन के बिना मेरे नेत्र सदा दुःखी रहते हैं।

या मोहन के मैं रुप लुभानी

मैं इन मोहन के रूप पर मोहित हो चुकी हूँ। इनका सुन्दर मुख कमल है, मनोहर कमल जैसे नेत्र हैं और मन्द मुस्कान से युक्त तिरछी चितवन है। ये मनमोहन यमुना के तट पर गाय चराते हैं और वंशी में मधुर स्वर गाते हैं। मैं अपने तन, मन और धन को गिरधर गोपाल के ऊपर न्यौछावर करती हूँ। यह मीरा उनके चरण कमलों में सर्वांग से लिपटी हुई है।

या मोहन के मैं रुप लुभानी ।
सुंदर वदन कमल दल लोचन, बांकी चितवन मंद मुसकानी ॥
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, बंसी में गावै मीठी बानी ।
तन मन धन गिरिधर पै बारूँ, चरन कमल 'मीरा' लपटानी ॥

पग घुँघरु बाँध मीरा नाची रे

पैरों में घुँघरू बाँधकर मीरा नृत्य करती हैं, वो कहती हैं कि मैं तो अपने नारायण की सहज में ही दासी हो गयी हूँ। सांसारिक लोग कहते हैं कि मीरा पागल हो गयी है और सास कहती है कि इसने हमारे कुल का नाश कर दिया। राणा जी ने विष का प्याला भेजा लेकिन मीरा तो उसे हँसकर पी गयी। मीरा जी कहती हैं – मुझे तो अपने अविनाशी प्रभु गिरधर नागर सुलभता से प्राप्त हो गये हैं।

पग घुँघरु बाँध मीरा नाची रे ।
मैं तो अपने नारायण की, आपुहि हो गइ दासी रे ।
लोग कहैं मीरा भइ बावरी, सास कहै कुल नासी रे ।
विष का प्याला राणा जी भेज्या, पीवत मीरा हाँसी रे ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासी रे ॥

हरि मेरे जीवन प्राण अधार

हरि मेरे जीवन प्राण अधार ।
और आसरो नाहीं तुम बिन, तीनों लोक मँझार ॥
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरख्यो सब संसार ।
'मीरा' कहै मैं दास रावरी, दीज्यो मती बिसार ॥

हे हरि ! तुम मेरे जीवन और प्राणों के आधार हो। तीनों लोकों में मुझे तुम्हारे अतिरिक्त और कोई आश्रय नहीं दिखाई देता। मैंने सारा संसार देख लिया लेकिन तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। मीरा जी कहती हैं – हे नाथ ! मैं तुम्हारी दासी हूँ, मुझे कभी भूल मत जाना।

बसो मेरे नैनन में नंदलाल

बसो मेरे नैनन में नंदलाल ।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति, नैणा बने विसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजन्तीमाल ।
क्षुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल ।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछल गोपाल ॥

हे नन्दनन्दन ! कृपा करके मेरे नेत्रों में निवास करो। विशाल नयन और श्याम रंग से युक्त तुम्हारा रूप अत्यन्त मनमोहक है। तुम्हारे मुख पर अधरामृत का पान करने वाली वंशी सुशोभित है और वक्षःस्थल पर वैजयन्ती माला विराजित है। सुन्दर कमर पर करधनी की छोटी-छोटी घंटियाँ सुशोभित हैं और चरण कमलों में रसमयी ध्वनि करने वाले नूपुर विराजमान हैं। मीरा जी कहती हैं कि मेरे प्रभु गोपाल जी संतों-भक्तों के प्रति वात्सल्य भाव से परिपूर्ण और उनको आनन्द प्रदायक हैं।

जागो बंशी बारे ललना जागो मेरे प्यारे

यशोदा मैया कन्हैया को जगाते हुए कहती हैं – मेरे प्यारे वंशी बजैया लाल ! अब जाग जाओ, रात्रि बीत चुकी है, शुभ प्रातः काल है। घर-घर सबके द्वार खुल चुके हैं। ब्रज गोपियाँ दधि मंथन कर रही हैं और उनके कंगन की मधुर झनकार सुनाई पड़ रही है। हे लाल जी ! उठो, प्रभातकाल की बेला है और हमारे द्वार पर देवता और मनुष्य तुम्हारे दर्शन के लिए खड़े हैं। ग्वालवाल भी उच्च

स्वर से तुम्हारे जयकार की मधुर ध्वनि कर रहे हैं। गौओं के रक्षक ! मैं तुम्हारे कलेऊ के लिए हाथ में माखन-रोटी लेकर खड़ी हुई हूँ । मीरा जी कहती हैं कि मेरे प्रभु गिरधर नागर अपने शरणागत का उद्धार करते हैं।

जागो बंशी बारे ललना जागो मेरे प्यारे ।
रजनी बीती भोर भयो है, घर-घर खुले किवारे ।
गोपी दही मथत सुनियत है, कंगना के झनकारे ।
उठो लाल जी भोर भयो है, सुर नर ठाड़े द्वारे ।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, जय जय सब्द उचारे ।
माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, शरण आया कूँ तारे ।

स्याम म्हाने चाकर राखो जी

हे श्यामसुन्दर ! हे गिरधरलाल ! कृपा करके मुझे अपनी दासी बना लो। दासी बनकर मैं बाग लगाऊँगी और उस बाग में नित्य प्रातःकाल उठकर तुम्हारा दर्शन पाऊँगी। वृन्दावन में जाकर वहाँ की कुंज गलियों में तुम्हारी लीला गाया करूँ गी। तुम्हारी सेवा के पुरस्कार स्वरूप मैं तुम्हारा दर्शन पाऊँगी, तुम्हारे नित्य स्मरण का वेतन मुझे मिलेगा और भाव भक्ति की जागीरी पाऊँगी। ये तीनों उपलब्धियाँ मुझे तुम्हारी दासता के परिणाम स्वरूप मिलेंगी । मुरली मनोहर मनमोहन के सिर पर सुन्दर मोर पंखों का बना मुकुट है, शरीर पर सुन्दर पीताम्बर और गले में सुगन्धित वैजयन्ती माला शोभायमान है। वृन्दावन में गौचारण करते हुए श्याम सुन्दर मधुर स्वरों में मुरली बजाया करते हैं। वृन्दावन में मैं हरे-भरे वृक्षों से युक्त बाग लगाऊँगी और उनके बीच-बीच में क्यारी बनाऊँगी। अपने तन पर मैं भगवा वस्त्र पहनकर साँवरे के नित्य ही दर्शन किया करूँगी। योगी योग साधन करने को आता है और सन्यासी तप करने के लिये आता है लेकिन वृन्दावनवासी संत तो केवल हरिभजन (हरिगुणगान) करने के लिए आता है। मीरा जी कहती हैं कि

स्याम म्हाने चाकर राखो जी, गिरिधारी लाल चाकर राखो जी ।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ नित उठ दरसण पासूँ ।
वृंदावन की कुंज गलिन में तेरी लीला गासूँ ।
चाकरी में दरसण पाऊँ सुमिरण पाऊँ खरची ।
भावभगति जागीरी पाऊँ तीनो बातां सरसी ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै गल बैजन्ती माला ।
वृंदावन में धेनु चरावै मोहन मुरली वाला ।
हरे-हरे नित बाग लगाऊँ, बिच-बिच राखूँ क्यारी ।
साँवरिया के दरसण पाऊँ पहर कसूंभी सारी ।
जोगी आया जोग करण को तप करणे सन्यासी ।
हरि भजन कूँ साधु आया वृंदावन के वासी ।
'मीरा' के प्रभु गहिर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हें प्रेम नदी के तीरा ॥

मेरे प्रभु अथाह और गंभीर प्रेमी हैं, अतः सदा धैर्य रखना चाहिये। प्रेम नदी के तट पर अर्थात् प्रेम की परिपक्व अवस्था में प्रभु ने आधी रात को ही दर्शन दे दिया।

नहिं भावै थारो देसड़

हे राणा ! मुझे तुम्हारा देश ठीक नहीं लगता। तुम्हारे देश में कोई साधु-संत तो हैं नहीं, बड़े-बड़े राजकुमार बढ़िया राजसी वेष में आते रहते हैं, ये सब केवल कूड़ा-करकट हैं और कुछ नहीं। मैंने तो आभूषण आदि पहनना छोड़ दिया है, हाथों में जड़ाऊ-चूड़ा भी नहीं धारण करती हूँ। आँखों में काजल और माथे पर बिन्दी लगाना भी त्याग दिया है। केशों का श्रृंगार (जूड़ा बाँधना) भी मैंने छोड़ दिया है। मीरा जी कहती हैं कि मैंने तो अपने प्रभु गिरधर नागर के रूप में श्रेष्ठ वर को पा लिया है।

नहिं भावै थारो देसड़ लोजी रंगरुड़ो ।
थारा देसा में राणा साधु नहीं छै, लोग बसे सब कूड़ो ।
गहणा गांठा हम सब त्यागा, त्याग्यो कररो चूड़ो ।
काजल टीकी हम सब त्याग्या, त्याग्यो है बांधन जूड़ो ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर बर पायो छै रुड़ो ।

श्री गिरिधर आगे नाचूंगी

मैं तो अपने गिरधर लाल जी के सामने नृत्य करूँगी। अच्छी तरह से नृत्य करके मैं अपने रसिक प्रियतम को प्रसन्न करूँगी और प्रेमी भक्तों की भी नृत्य के द्वारा जाँच करूँगी (जो प्रेमीभक्त होगा वह तो नृत्य से प्रसन्न होगा और जो नहीं होगा वह नृत्य की निन्दा करेगा)। नृत्य करते समय मैं प्रेमाभक्ति का तो पाँव में घुँघरू बाँधूँगी, इस प्रकार नृत्य करने के द्वारा मैं अपने पिया श्री हरि के प्रेम के रंग में रंगकर उनकी सेज पर जा बैठूँगी।

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी ।
नाच नाच पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन को जाचूँगी ।
प्रेम प्रीति का बाँध घूँघरु, सुरत की कछनी काछूँगी ।
लोक लाज कुल की मरजादा, यामे एक न राखूँगी ।
पिव के पलगा जा पौढूँगी, 'मीरा' हरि रंग राचूँगी ।

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ

मैं तो अब अपने प्यारे गिरधर लाल के घर (उनके देश) जाऊँगी। गिरधर ही मेरे सच्चे प्रियतम हैं, उनका सुन्दर रूप देखकर मैं मोहित हो जाऊँगी। रात होते ही मैं उनके पास चली जाऊँगी और प्रातः काल वापस आ जाऊँगी। रात- दिन मैं उनके साथ क्रीड़ा करूँगी और हर प्रकार से उन्हें प्रसन्न करूँगी। गिरिधारी जो भी वस्त्र मुझे पहनने को देंगे, मैं उसी को पहन लूँगी और खाने के लिये जो भी देंगे प्रसन्नता से उसी को खा लूँगी। मेरा और उनका प्रेम अत्यन्त पुराना है, उनके बिना मैं अब क्षण भर भी नहीं रह सकती। जहाँ भी मेरे प्रभु मुझको बैठा देंगे मैं वहीं बैठ जाऊँगी और यदि वे मुझे बेचते हैं तो मैं आनन्द से बिक जाऊँगी। मीरा जी कहती हैं कि मैं अपने प्रभु गिरधर नागर की बार-बार बलिहारी जाती हूँ (उन पर अपने को न्यौछावर करती हूँ)।

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ ।
गिरिधर म्हारो साँचों प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ।
रैण पड़ै तब ही उठ जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ ।
रैण दिनां वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ ।
जहाँ बिठावै तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ ।

तेरो कोई नही रोकनहार

मीरा जी कहती हैं - अब संसार में मुझे रोकने वाला कोई नहीं है और मैं आनन्द से प्रेम भक्ति के मार्ग पर चल पड़ी हूँ। मैंने जगत की लाज-शर्म और राजकुल की मर्यादा का पूरी तरह से त्याग कर दिया है। सांसारिक मान-अपमान को मैंने धूल में मिला दिया है (मान-अपमान का बिल्कुल भी मुझे ध्यान नहीं है), इस तरह से मैं ज्ञान की गली में निकल पड़ी हूँ। प्रेम का भवन

तेरो कोई नही रोकनहार मगन होइ मीरा चली ।
लाज सरम कुल की मरजादा, सिरसैं दूर करी ।
मान अपमान दोऊ धर पटकै, निकसी ग्यान गली ।
ऊँची अटरिया लाल किवड़िया, निरगुण सेज बिछी ।
पचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फलन कली ।
बाजूबंद कड़ूला सोहै, सेन्दुर मांग धरी ।
सुमिरण थाल हाथ में लीन्हो, सोभा अधिक खरी ।
सेज सुखमणा 'मीरा' सोहै, सुभ है आज घरी ।
तुम जाओ राणा घर अपने, म्हारी थारी नांहि सरी ।

विषयी जगत से दूर सर्वोच्च अवस्था पर प्राप्त होता है, उसमें प्रवेश करने का द्वार भी लाल है (प्रेम का रंग लाल माना गया है)। विश्राम करने के लिए निर्गुण शय्या बिछी है अर्थात् त्रिगुणमयी माया से परे है प्रेम का स्वरूप – दिव्य चिन्मय। यह प्रेमा भक्ति पाँच प्रकार की है – शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और श्रृंगार। इसकी शोभा अति अद्भुत है। पंचभाव रूपी फूल, फल और कलियों से युक्त यह पचरंगी भक्ति की आकर्षक झालर है। मैंने प्रियतम श्याम को प्रसन्न करने के लिए बाजूबंद और कड़ूला आदि आभूषण धारण कर लिए हैं और मांग में सिन्दूर भर ली है जो मेरे अमर सुहाग का प्रतीक है। श्री कृष्ण की अनन्य स्मृति का मैंने हाथ में थाल ले रखा है, इससे मैं अत्यन्त सुशोभित हो गयी हूँ। मेरी सुषुम्ना नाड़ी भक्ति के प्रभाव से सहज ही जाग गयी है (जो सिद्धि योगी को अत्यन्त क्लिष्ट साधन से, अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होती है, वह भक्ति के प्रभाव से अत्यन्त सहजता से प्राप्त हो जाती है)। आज का समय अत्यन्त मंगलमय है। हे राणा जी, अब तुम अपने घर जाओ क्योंकि तुम्हारे और मेरे रास्ते बिल्कुल विपरीत हैं (न तो मैं तुम्हारी बात मानूँगी और न तुम मेरी बात मानोगे)।

राणा जी मैं गोविन्द के गुण गाणा

राणा जी मैं गोविन्द के गुण गाणा।
राजा रुठै नगरी रूठै ,हरि रूठ्यां कहँ जाणा।
राणा भेज्यो जहर का प्याला, इमरित करि पी जाणा।
डबिया में भेज्या सर्प भुजंगम, सालिगराम कर जाणा।
'मीरा' तो अब प्रेम दिवानी, सांवलिया वर पाणा।

हे राणा जी ! मैं तो केवल अपने गोविन्द का ही गुणगान करूँगी। चाहे राजा नाराज हो, चाहे नगर के लोग नाराज हों (मुझे इनकी कोई परवाह नहीं है) किन्तु यदि मेरे श्री हरि नाराज हो गये तो मैं कहाँ जाऊँगी? राणा जी ने मेरे लिए विष का प्याला भेजा, मैं उसे चरणामृत समझकर पी गयी और वह विष मेरे लिये अमृत बन गया। इसके बाद राणा ने भयंकर सर्प एक डबिया में बन्द करके मेरे पास भिजवाया, मैंने उसे शालिग्राम ठाकुर समझ के ग्रहण किया और सत्य ही वह शालिग्राम बन गया। मीरा जी कहती हैं कि साँवरे श्यामसुन्दर के प्रेम की दीवानी होकर मैंने उनके चरण-कमलों को प्राप्त कर लिया है।

राणा जी मैं तो गोबिन्द का गुण गास्यां

राणा जी, मैं तो गोविन्द का ही गुण गाऊँगी। मेरा नित्य का नियम है प्रभु के चरणामृत लेने का और नित्य ही मैं प्रभु का दर्शन करने जाती हूँ। श्री हरि के मंदिर में मैं घुंघुरुओं की झनकार के साथ नृत्य करती हूँ। कीर्तन करते हुए मैं राम नाम का झाँझ बजाती हूँ और इस प्रकार भवसागर

के पार चली गयी हूँ। यह संसार तो कष्टप्रद काँटों की बाड़ (घेरा) है, इसका संग मैं कभी नहीं करूँगी। मीरा जी कहती हैं कि मैं तो अपने गिरधर नागर ठाकुर जी का दर्शन एवं स्पर्श प्राप्त करके सदा उनके यश का गान करूँगी।

राणा जी मैं तो गोबिन्द का गुण गास्यां ।
चरणामृत को नेम हमारा, नित उठ दरसण जास्यां ॥
हरि मन्दिर में निरत करास्यां, घूंघरिया धमकास्यां ।
राम नाम का झांझ चलास्यां, भवसागर तरजास्यां ॥
यह संसार बाड़ का कांटा, ज्या संगत नहिं जास्यां ।
'मीरा' कहै प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गास्यां ॥

तुम बिन मेरी कौन खबर ले

गिरिराज गोवर्धन को धारण करने वाले गिरधारी तुम्हारे बिना इस जगत में मेरी सुधि और कौन लेगा? तुम्हारे सिर पर मोर पंखों का मुकुट और छत्र विराजित रहता है। युगल कर्णों में कुण्डलों की शोभा बड़ी दिव्य है। ये गिरधारी वृन्दावन में गायों को चराते हैं और बाँसुरी में अपनी प्रिया श्री राधारानी का नाम लेकर आह्वान करते हैं। मीरा जी कहती हैं – हे मेरे प्रभु गिरधर नागर! मैं आपके चरण कमलों पर अपने को न्यौछावर करती हूँ। मीरा जी कहती हैं – हे गिरधारी! मैं जन्म-जन्म की तुम्हारी दासी हूँ, अब मुझसे शीघ्र ही आकर मिलो।

तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी ।
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे, कुण्डल की छबि न्यारी ।
वृंदावन में धेनु चरावे, बंसी में बुलावे राधा प्यारी ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी ।
'मीरा' दासी जनम-जनम की, आय मिलो गिरिधारी ।

आली म्हाने लागे वृंदावन नीको

हे सखी! मुझे वृन्दावन अत्यन्त प्रिय लगता है, इस वृन्दावन के प्रत्येक घर में ब्रजवासी तुलसी और ठाकुर जी की आराधना करते हैं और मंदिर में गोविन्द देव जी का दर्शन करते हैं। यहाँ यमुना जी में स्वच्छ जल प्रवाहित होता है और

आली म्हाने लागे वृंदावन नीको ।
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविन्द जी को ॥
निरमल नीर बहत जमुना को, भोजन दूध दही को ।
रतन सिंहासन आप विराजै, मुकुट धर्‌यो केकी को ॥
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको ॥

यहाँ के निवासी दूध-दही का भोजन करते हैं। हे ठाकुर जी ! आप रत्न जड़ित सिंहासन पर विराजते हैं और आपके शीश पर मयूर पंख का मुकुट सुशोभित है। इस ब्रज-वृन्दावन की प्रत्येक कुंज में श्री राधा रानी विचरण करती हैं और श्याम सुन्दर द्वारा बजायी गयी वंशी के मधुर स्वर का श्रवण करती हैं। मीरा जी कहती हैं कि मेरे प्रभु गिरधर नागर का भजन किये बिना मनुष्य नीरस ही बना रहता है।

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना ।
लै मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नंद जी को छोना ।
दधि को नाम बिसर गयो प्यारी, ले लेहु री कोउ स्याम सलोना ।
वृंदावन की कुंज गलिन में, आँख लगाए गयो मनमोहना ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, सुन्दर श्याम सुघर रसलोना ।

इस ब्रज में मैंने एक विचित्र जादू देखा। कोई ब्रजांगना अपने सिर पर दही से भरी मटकी लेकर चली तो मार्ग में आगे चलने पर उसे नन्दनन्दन मिल गये। (लाल जी से मिलने के बाद) वह गोपिका दधि-विक्रय के लिए आगे बढ़ी तो "दही लो-दही लो" ऐसा कहना भूलकर "कोई श्यामसुन्दर को ले लो, अरी कोई श्याम सुन्दर को ले लो" इस प्रकार से पुकारने लगी। वृन्दावन की कुंज गलियों में चित्त चोर मनमोहन गोपी के नेत्रों में इस प्रकार बस गये हैं कि सर्वत्र उन्हीं का दर्शन होता है। मीरा जी कहती हैं कि मेरे प्रभु गिरधर नागर का सुन्दर श्यामवर्ण तथा सुगठित देह है और वह रस के आलय हैं।

तू मत बरजै माई री

तू मत बरजै माई री मैं तो साधा दरसण को जाती ।
माई कहै सुण धींमड़ी काहे गुण फूली ।
लोग सोबैं सुख नींदड़ी क्यों रैणज भूली ।
गैली दुनियां बावड़ी जाको राम न भावै ।
ज्यां रे हिरदय हरि बसै त्यां कूं नींद न आवै ।
चौमासे की बावड़ी त्यां का नीर न पीजै ।
हरि नाले अमरित झरै त्यां की आस करीजै ।
रूप सुरंगा राम जी मुख निरखत जीजै ।
'मीरा' व्याकुल विरहिणी अपनी कर लीजै ।

मीरा जी अपनी माँ से कहती हैं – "हे माँ ! तुम मुझे साधु दर्शन के लिए जाने से मत रोको। " माँ कहती है – "अरे बेटी ! मेरी बात सुन, तू क्यों गर्व में फूली फिरती है। इस रात्रिकाल में संसार के सभी लोग आनन्द से सो रहे हैं, ऐसे में तू क्यों रात्रि में जागती है (बाहर घूमती है)। "मीरा जी उत्तर

देती हैं – माँ, यह दुनिया पागल है जिसे भगवान् प्रिय नहीं लगते। जिसके हृदय में श्री हरि बस गये हैं (श्रीहरि का प्रेम उत्पन्न हो गया है) उसे नींद कैसे आ सकती है। इन संसारी लोगों का रास्ता तो चौमासे (वर्षाकाल के) गंदे तालाब की तरह है, उसका जल नहीं पीना चाहिए अर्थात् इन विषयी मनुष्यों के द्वारा अनुसरण किये गये मार्ग का अनुमोदन मत करो। श्री हरि के कथा – कीर्तन रूपी अमृतमय नाले से प्रवाहित रस का आस्वादन करो। अनन्त रूप राशि वाले श्यामसुन्दर के मुख कमल का दर्शन करके ही जीवन धारण करना चाहिए। मीरा जी कहती हैं – हे नाथ! विरह व्यथा से व्याकुल मुझ विरहणी को कृपा करके अपना बना लीजिये।

प्यारे दरसन दीज्यौ आय

प्यारे दरसन दीज्यौ आय, तुम बिन रह्यो न जाय।
जल बिनु कमल चंद बिनु रजनी, ऐसे तुम देख्यां बिनु सजनी।
आकुल व्याकुल फिरूँ रैन दिन, बिरह करैजो खाय।
दिवस न भूख नींद नहीं रैना, मुख सूं कथत न आवै बैना।
कहा कहूं कछु कहत न आवै, मिलकर तपन बुझाय।
क्यूं तरसावौ अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
'मीरा' दासी जनम-जनम की, परी तिहारै पांय।

प्यारे श्याम सुन्दर शीघ्र ही आकर आप मुझे दर्शन दीजिए, आपके मिले बिना अब मुझसे रहा नहीं जाता। जैसे जल के बिना कमल खिल नहीं सकते, चन्द्रमा के बिना रात्रि की कोई शोभा नहीं, वह घोर अन्धकार युक्त होती है उसी प्रकार हे स्वामी! आपको देखे बिना मेरा जीवन शून्य है। आपकी विरह व्यथा से पीड़ित होकर मैं दिन-रात भटकती रहती हूँ। वियोग की वेदना हृदय में दारुण दुःख उत्पन्न कर रही है। दिन में मुझे भूख नहीं लगती है और रात को नींद नहीं आती है तथा मुख से वाणी नहीं निकलती है। क्या कहूँ? मैं कुछ भी कहने में असमर्थ हूँ, हे गिरधारी! शीघ्र ही मुझसे मिलकर हृदय की जलन को शान्त करो। हे अन्तर्यामी! आप मुझे क्यों तड़फा रहे हो? हे स्वामी! कृपा करके मुझसे जल्दी आकर मिलो। मीरा जी कहती हैं – मैं जन्म-जन्मान्तरों की आपकी दासी हूँ अतः आपके चरणों में प्रणत (शरणागत, नत मस्तक) हूँ।

कान्हा तेरी जोहत रह गइ बाट

हे कन्हैया ! मैं तो तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करती रह गयी। प्रतीक्षा करते-करते यमुना के घाट पर खड़े-खड़े सारा दिन बीत गया। मनमोहन ने झूठा प्रेम किया और ऐसे कपटी पिया के इंतजार में व्यर्थ ही मेरा समय बीत गया। मीरा जी कहती हैं – हे प्रभु गिरधर नागर ! मैं अब तुमको हृदय रूपी दरवाजे के भीतर बन्द करके अपने मन में बसाऊँगी।

कान्हा तेरी जोहत रह गइ बाट ।
जोहत-जोहत इक पग ठाड़ी कालिन्दी के घाट ।
झूठी प्रीति करी मनमोहन, पिय कपटी की बाट ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, राखूँगी हिये कपाट ।

तोसो लाग्यो नेह रे प्यारे

हे चतुर नायक नन्दनन्दन प्यारे ! मेरा तुमसे सुदृढ़ अनुराग हो गया है। तुम्हारी वंशी की धुन ने इस तरह से मेरा मन हरण किया कि मैं घर और संसार सम्बन्धी सभी व्यवहार पूरी तरह भूल गयी। जब से तुम्हारी मुरली धुन मेरे कानों में पड़ी मुझे घर-आँगन बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता। जैसे अवसर पाते ही बहेलिया हिरनी का वध कर देता है, उसी प्रकार तुमने भी अपने नेत्रों के बाण और मुरली की तान से मेरा वध कर दिया है। जल से अलग होते ही मछली तड़प-तड़प कर मर जाती है लेकिन जल उसके कष्ट को नहीं जान पाता। भ्रमर सूर्यास्त के समय कमल में बंद हो जाता है, लेकिन कमल को दाँत से काटकर मुक्त नहीं होता, बन्धन स्वीकार कर लेता है। उसके इस प्रेम को कमल नहीं जानता। पतंगे उड़-उड़कर दीपक की लौ में आकर जल मरते हैं, लेकिन दीपक को उनके ऊपर दया नहीं आती। मीरा जी कहती हैं – जैसे रंग पानी में घुल जाता है, उसी प्रकार मैं साँवरे गिरधर के रंग में रंग गयी हूँ।

तोसो लाग्यो नेह रे प्यारे नागर नंद कुमार ।
मुरली मेरा मन हर्‍यो बिसर्‍यो घर व्यौहार ॥
जब ते श्रवननि धुनि परी, घर अंगणा न सुहाय ।
पारधि ज्यूं चूकै नहीं, मृगी बेध दइ आय ॥
पानी पीर न जानइ ज्यौं, मीन तड़फ मरि जाय ।
रसिक मधुप के मरम को, नहीं समुझत कमल सुभाय ॥
दीपक दया नहीं, उड़ि-उड़ि मरत पतंग ।
'मीरा' प्रभु गिरिधर मिले, जैसे पाणी मिलि गयौ रंग ॥

मै बिरहिणी बैठी जागूं

हे सखी ! मैं श्री कृष्ण के विरह में बैठी रात भर जागती हूँ जबकि संसार में सभी लोग रात को चैन से सोते रहते हैं। राजघराने की विरहणी तो शाही महल में बैठकर मोतियों की माला पिरोया करती है जबकि मेरे जैसी वैरागिन विरहणी तो केवल अनवरत बहने वाली अश्रुधारा की माला पिरोती है (श्रीकृष्ण विरह में आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बहाती रहती है)। आकाश के तारे गिन-गिन कर मैं रात बिताती हूँ (विरह व्यथा में नींद न आने के कारण सारी रात जागते हुए व्यतीत होती है)। आनन्द के दिन पता नहीं कब आयेंगे (पता नहीं कब प्रियतम से मिलन होगा)। मीरा जी कहती हैं – हे मेरे स्वामी गिरधर नागर ! अबकी बार मिलन के बाद कहीं बिछुड़ मत जाना, सदा मिले ही रहना।

मै बिरहिणी बैठी जागूं जागत सब सोवै री आली ।
बिरहिणि बैठी रंग महल में, मोतियन की लड़ पोवै ।
इक बिरहिणी हमने देखी, अंसुवन माला पोवै ।
तारा गिण-गिण रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, मिल के बिछुड़ न जावै ।

सोवत ही पलका में मैं

पलंग पर शयन करते ही मुझे नींद आ गयी और स्वप्न में देखा कि गिरधारी पिया पधारे हैं, स्वप्न में ही मैं उनके स्वागत के लिए ज्यों ही खड़ी हुई कि इतने में मेरी नींद खुल गयी, जागने पर उन्हें बहुत ढूँढ़ा लेकिन प्यारे के कहीं दर्शन न हुए। अन्य नायिकायें तो सो जाने के कारण पिया मिलन से वंचित हो जाती हैं और मैं तो जाग्रत अवस्था में प्रियतम के मिलन से वंचित रह गयी। मीरा जी कहती हैं कि प्रभु गिरधर नागर के घर पधारने पर ही सब प्रकार का आनन्द मंगल होगा।

सोवत ही पलका में मैं तो पलक लगी पल में पिय आये ।
मैं जो उठी प्रभु आदर देण कूँ जाग पड़ी पिय ढूंढ न पाये ॥
और सखी पिय सोय गंवाये, मैं जो पिय सखी जाग गंवाये ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, सब सुख होय श्याम घर आये ॥

किसने सिखाया श्याम तुम्हें

मीरा जी कहती हैं – हे श्यामसुन्दर ! तुमको मधुर बोलना किसने सिखाया, तुम्हारी मधुर वाणी और प्रेम से भरी चितवन चित्त को चुरा लेती है। तुम्हारा लाख रुपये का तो जामा है और करोड़ रुपये का पटुका है। तुम्हारे सिर पर मुकुट है, हाथ में लकुट है और घुँघराली अलकें हैं। मनमोहन श्रीकृष्ण से प्रेम करके फिर संसार में किसी से बात करने का कोई प्रयोजन नहीं है। मीरा जी कहती हैं – हे प्रभु ! मेरे हृदय की अविद्या की गाँठ को तुम्हीं आकर नष्ट करो।

किसने सिखाया श्याम तुम्हें मीठा बोलना ।
मीठी तुम्हारी बाणी चितवन का चोरना ॥
जामा तेरो लाख का है, पटका करोरना ।
शीश मुकुट लकुट हाथ, लटका मरोरना ॥
मोहन सों प्रीति करके कहो का सों बोलना ।
'मीरा' की हृदय गांठ तुम्ही आके खोलना ॥

राणा जी मोहि यह बदनामी लागै मीठी

राणा जी ! मुझे तो अपनी बदनामी बहुत अच्छी लगती है, चाहे कोई मेरी निन्दा करे, चाहे कोई मेरी प्रशंसा करे, मैं तो अपनी अनूठी प्रेम की चाल से चलूँगी (प्रेमभक्ति के दिव्य मार्ग पर चलती रहूँगी)। ब्रज की साँकरी गली में मुझे श्याम सुन्दर मिल गये, अब मैं उन्हें छोड़कर कहीं और क्यों जाऊँगी। गिरधर गोपाल जी के दर्शन होने पर मैं उनसे बात करने लगी । दुष्टों ने गलत समझकर मेरी निन्दा की । मीरा जी कहती हैं – मुझे तो मेरे प्रभु गिरधर गोपाल की प्राप्ति हो गयी है, इससे दुष्ट लोग द्वेष की अंगीठी में व्यर्थ जलते हैं (मुझे इसकी कोई परवाह नहीं)।

राणा जी मोहि यह बदनामी लागै मीठी ।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं तो चलूंगी चाल अनूठी ।
सांकरी गली में गिरिधर मिलिया, मैं क्यूँ फिरूँ अपूठी ।
गिरिधर जी सो बातां करता, दुर्जन लोगां ने दीठी ।
'मीरा' को तो गिरधर मिलिया, दुर्जन जलो अंगीठी ।

मैं तो थारे दामन लागी जी गोपाल

हे गोपाल जी ! मैंने तो एक मात्र तुम्हारा ही आश्रय ले रखा है। शीघ्र ही तुम मेरे ऊपर कृपा करो, मुझे दर्शन दो और मेरी खबर लो। तुम्हारे गले में वैजयन्ती माला सुशोभित हो रही है, ऐसे

मैं तो थारे दामन लागी जी गोपाल ।
किरपा कीजो दरसन दीजो, सुधि लीजो तत्काल ॥
गल वैजन्ती माला सोहै, दरसन भई निहाल ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, भगतन के प्रतिपाल ॥

सुन्दर रूप का दर्शन करके मैं तो निहाल हो गयी। मीरा जी कहती हैं कि मेरे प्रभु गिरधर नागर भक्तों के प्रतिपालक (रक्षक) हैं।

करमन की गति न्यारी

हे गिरधारी ! मैं तुम्हें पत्र कैसे लिखूँ? कर्मों की गति अत्यन्त विचित्र है। पान की बेल पर सैकड़ों पत्ते उगते हैं, जिन्हें खाने के लिए लोग तरसते हैं और यदि पत्ते के साथ उस बेल में फूल भी लगता तो उसकी महिमा और बढ़ जाती। लूमा हजार पंखुड़ी का बेकार फूल होता है, यदि उसमें फल लगता तो उसकी कुछ महिमा भी होती। विधाता ने मांसाहारी पक्षी बगुले को तो उज्ज्वल सफेद रंग दे दिया लेकिन मीठे स्वर से बोलने वाली कोयल को काला बना दिया। इस संसार में एक मूर्ख व्यक्ति राजा बनकर शासन करता है और विद्वान भीख माँगकर अपना जीवन-निर्वाह करता है। कभी-कभी देखा जाता है कि पतिव्रता स्त्री के तो कोई पुत्र नहीं होता और कुलटा स्त्री की बहुत सी संतानें हो जाती हैं। हिरनी को विधाता ने विशाल सुन्दर नेत्र प्रदान किये किन्तु पशु होने के कारण वन-वन वह नंगी घूमती है। इसी प्रकार नदी का पानी तो मीठा कर दिया जबकि समुद्र का पानी खारा कर दिया जो कि पीने के बिल्कुल

करमन की गति न्यारी, कैसे पतियां लिखूं गिरिधारी ।
नागर बेल फूल बिन तरसै, फूला लूम हजारी ॥
उज्जवल पंख दिये बगुला को कोयल केहि बिधि कारी ।
मूरख राजा राज करत है, पण्डित फिरै भिखारी ॥
पतिव्रता नारि पुत्र बिन तरसै, फूहर जनि जनि हारी ।
बड़े नैन दीने मिरगा को, वन-वन फिरत उघारी ॥
और नदी को मीठो पानी, समुंदर कीनी खारी ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरनन बलिहारी ॥

भी लायक नहीं है। (इस प्रकार कर्मों की गति बड़ी ही विचित्र है। विधाता का विधान समझ से परे है)। मीरा जी कहती हैं – इसीलिए मैं तो अपने स्वामी गिरधर नागर के चरणों पर न्यौछावर हूँ।

दरस बिन दूखण लागे नैन

दरस बिन दूखण लागे नैन ।
जब से तुम बिछड़े प्रभु मोरे, कबहुँ न पायो चैन ॥
सबद सुणत मेरी छतियां काँपै, मीठे लागे बैन ।
विरह कथा कासूं कहूँ सजनी, बह गयी करवत ऐन ॥
कल न परत मोहि हरि मग जोवत, भई छमासी रैन ।
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेंटन सुख दैन ॥

साँवरे के दर्शन बिना मेरे नेत्र अत्यधिक दुखी हैं। हे स्वामी जब से तुम्हारा वियोग हुआ, तब से आज तक मैं कभी शान्ति नहीं पा सकी। कोयल, पपीहा आदि पक्षियों के मीठे शब्द सुनते ही मेरा हृदय काँप उठता है और बैन आदि के कठोर शब्द मुझे मीठे लगते हैं। गोविन्द के विरह में तड़पती रहती हूँ, इसलिये रात को सो नहीं पाती, करवट लेते-लेते मेरा सारा सुख चला गया। हे सखी ! अब इस विरह-व्यथा को मैं किससे कहूँ? मुझे चैन नहीं मिलता, निरन्तर श्रीहरि के आने की बाट देखती रहती हूँ। रात मेरे लिए छः महीने के बराबर हो गयी है। मीरा जी कहती हैं – हे स्वामी ! तुम दुःख मिटाने वाले और आनन्द दाता हो, मुझे कब तुम्हारे दर्शन होंगे? कब मुझे आकर मिलोगे?

मीरा थारो कांई लागै गोपाल

मीरा थारो कांई लागै गोपाल ।
सर्प पिटारा राणा जी भेज्या, दे मीरा के हाथ ।
खुश हो मीरा ले लिया, बण गया मोतिन हार ॥
जहर पियाला राणा भेज्या, दे मीरा के हाथ ।
खुश हो मीरा पी लिया, तुम जाना गोपाल ॥
घूंघट के पट खोल दिये है, लोक लाज सब डार ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहार ॥

मीरा जी से लोग पूछते हैं कि गोपाल तुम्हारा क्या लगता है? अर्थात् गोपाल से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? राणा जी ने भयंकर विषैला सर्प पिटारी (डिबिया) में बन्द करके मीरा के पास भिजवाया। मीरा जी कहती हैं कि उसे ठाकुर जी समझकर मैंने आनन्दमग्न होकर ले लिया तो वह मोतियों का हार बन गया। इसके बाद राणा जी ने मेरे पास जहर से भरा प्याला भिजवाया, उसे भी मैंने गोपाल जी को अर्पित करके प्रसन्न चित्त होकर पी लिया। मैंने घूँघट का आवरण हटाकर लोक लाज को पूरी तरह मिटा दिया है। मीरा जी कहती हैं – मेरे प्रभु गिरधर नागर ! मैं तुम्हारे चरण कमलों पर न्यौछावर हूँ।

मेरे तो गिरिधर गोपाल

इस संसार में गिरधर गोपाल के अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है, जिसके सिर पर मोर पंखों का मुकुट है वही मेरा पति हैं। जगत में मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु कोई भी नहीं है। कुल की मर्यादा का मैंने त्याग कर दिया है, मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है? साधु-संतों के बीच बैठ-बैठ कर (सत्संग-कीर्तन आदि करके) मैंने लोक-लाज को दूर कर दिया है। रेशमी चुनरी को फाड़कर मैंने फटी-पुरानी लोई ओढ़ ली है। मोती-मूँगे के आभूषण उतारकर मैंने वनमाला धारण कर ली है। आँसुओं की धारा से सींचकर मैंने प्रेम की बेल बोयी है, अब तो यह प्रेम की बेल फैल गयी है और इसका आनन्द रूपी फल उत्पन्न होगा। दूध की मथानी को बड़े प्रेम से मैंने बिलोया, अब उसमें माखन निकल आया तो उसे मैंने ग्रहण कर लिया, बाकी बची खट्टी छाछ को कोई और पिये (साधन भक्ति का अनुष्ठान करने पर प्रेम लक्षणा भक्ति उत्पन्न हुई, उसे मैंने ग्रहण कर लिया; संसारी विषय रूपी खट्टी छाछ को तो विषयी पुरुष ही ग्रहण करेंगे)।

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई ॥
छांडि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई ।
संतन ढिंग बैठ-बैठ लोक लाज खोई ॥
चूनरी के किये टूक ओढ़ लीनी लोई ।
मोती मूंगे उतार वनमाला पोई ॥
अंसुबन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेलि फैलि गई आनंद फल होई ॥
दूध की मथनियां बड़े प्रेम ते बिलोई ।
माखन जब काढ़ि लियो छाछ पिये कोई ॥
भगत देखि राजी हुई जगत देख रोई ।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर तारो अब मोई ॥

सांवरे सों प्रीति करत ही

साँवरे गोपाल से जब मेरा प्रेम जुड़ा था तो शुरू में ही क्यों नहीं मुझे रोक दिया था? अब तो यह प्रेम बढ़ चुका है जैसे बरगद के बीज से विकसित होकर हजारों विशाल शाखायें फैल जाती हैं। मेरे इस प्रेम को सभी लोग जान गये हैं। वट बीज से उत्पन्न वृक्ष की शाखाओं की छाया दूर किनारे तक जाती है

सांवरे सों प्रीति करत ही तबहिं क्यों न हटकी ।
अब तो बात फैल गई जैसे बीज बटकी ॥
बीज को विचार नाहीं छांह परी तटकी ।
अब चूकूं तो ठौर नाहीं जैसे कला नट की ॥
जल की धुरी गांठ परी रसना गुन रटकी ।
अब तो छुड़ाय हारी बहुत बार झटकी ॥
मस्त हस्ती समान फिरत प्रेम लटकी ।
दासी 'मीरा' भक्ति बूंद हृदय बीच गटकी ॥

अर्थात् मेरा कृष्ण प्रेम अत्यधिक बढ़ चुका है, सबको इसकी खबर लग गयी है लेकिन मुझको इसकी कोई चिन्ता नहीं है, जो होगा वो देखा जाएगा। जैसे नट अपनी कठिन कला का प्रदर्शन करता है, उसमें जरा भी चूका तो मर जाता है , उसी प्रकार मैं प्रेम की राह पर चल पड़ी हूँ अब उससे एक पग भी नहीं हट सकती, जैसे भीगी रस्सी में गाँठ पड़ जाती है तो वह और मजबूत होती है, टूट नहीं सकती, उसी प्रकार मेरा कृष्ण प्रेम है, मेरी जीभ दिन-रात कृष्ण नाम रट रही है, जैसे भीगी रस्सी की मजबूत गाँठ हटाने से नहीं हटेगी उसी प्रकार अब यदि कोई मेरे कृष्ण प्रेम को छुड़ाना चाहे तो असम्भव है। अब तो मैं मतवाले हाथी के समान प्रेम में दीवानी हो गयी हूँ। दासी मीरा ने स्वाती बूँद के समान भक्ति की बूँद को पी लिया है वो हृदय में जम गयी है, अब वह भक्ति छूट नहीं सकती।

मैंने हरि सूं कीनी यारी

मैंने हरि सूं कीनी यारी ।
म्हारे घर के पिछवारे झाड़ में बैठा कुंज बिहारी ।
तन मन की हम बाता करता रैन गवाई सारी ॥
हूं जमुना जल भरन गई लहरन की छबि भारी ।
संग सहेली म्हारी दूर निकस गई भेंटा श्री बनवारी ॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणां बलिहारी ।
बांह गहे की लाज निभाया गोवर्धन गिरधारी ॥

मैंने तो श्री हरि से मित्रता कर ली है। मेरे घर के पिछवाड़े झाड़ में कुंजबिहारी बैठे थे। मैं जाकर उनसे मिली और अपने हृदय की बात कही, बात करते-करते सारी रात बीत गयी। प्रातः काल होने पर मैं जल लाने के लिए यमुना तट पर गयी, यमुना की नीली तरंगों की बड़ी अद्भुत शोभा थी। मेरे साथ की सखी मुझे छोड़कर दूर चली गयी, इतने में मुझे बनवारी लाल का दर्शन एवं मिलन प्राप्त हुआ। मीरा जी कहती हैं कि मैं तो प्रभु गिरधर नागर के चरणों पर न्यौछावर हूँ। हे गिरधारी! जैसे गिरिराज गोवर्धन को धारणकर आपने ब्रज की रक्षा की, उसी प्रकार मेरी बाँह पकड़कर मेरी भी लाज का निर्वाह करो।

मन रे परसि हरि के चरण

अरे मन, श्री हरि के चरण कमलों का स्पर्श कर। ये चरण कमल के समान अत्यन्त कोमल, शीतल और सुखद स्पर्श वाले हैं। ये चरणारविन्द शरणागतों के तीन प्रकार के (दैविक, दैहिक, भौतिक) कष्टों को हरण करने वाले हैं। जिन चरणों की शरण प्रह्लाद जी ने ग्रहण की, जिन चरण कमलों की शरण में आने पर इन्द्र को देवराज की पदवी मिली, जिन चरणों के प्रताप से ध्रुव जी को नभमण्डल में अचल ध्रुव लोक की प्राप्ति हुई। इन्हीं श्री हरि के चरणों ने सदा सर्वदा के लिए अनाथ

बालक ध्रुव को अपनी शरण की छत्र-छाया में रखा। वामन अवतार में इन्हीं चरणों ने राजा बलि से तीन पग भूमि का दान ग्रहण करते समय दो पग में सारे ब्रह्माण्ड को नाप लिया और तीसरे पग में दान हेतु कोई वस्तु न रहने पर नख से शिख तक राजा बलि ने अपने देह को समर्पित कर दिया और श्री हरि ने अपना तीसरा पग उनके मस्तक पर रखा। इन चरण कमलों के कृपापूर्ण स्पर्श से ही गौतम ऋषि के कठोर शापवश पत्थर बनी अहिल्या का उद्धार हुआ। श्यामसुन्दर ने गोप लीला करते समय ग्वाल-बालों और गौओं की रक्षा हेतु इन्हीं चरण कमलों से कालिय नाग का दमन किया। इन्हीं चरणों से सात दिन-रात खड़े रहकर श्याम सुन्दर ने गिरिराज जी को धारण किया और इस प्रकार इन्द्र के वर्धमान (बढ़े हुए) गर्व का हरण किया। मीरा जी कहती हैं कि ऐसे अद्भुत वैभव सम्पन्न गिरिधर लाल की मैं दासी हूँ जो भीषण भवबंधन से जीव का उद्धार करने वाले हैं।

मन रे परसि हरि के चरण ।
सुभग सीतल परम कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण ।
जिण चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरण ॥
जिण चरण ध्रुव अटल कीन्हें, राखि अपनी सरण ।
जिण चरण ब्रह्माण्ड भेट्यो नखसिखाँ सिरि भरण ॥
जिण चरण प्रभु परसि लीणो, तरी गौतम धरण ।
जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोप लीला-करण ॥
जिण चरण गोवर्धन धार्‍यो, गरव मघवा हरण ।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥

जब से मोहि नंदनंदन

हे माता ! जब से नन्दनन्दन मेरी दृष्टि के सामने आये हैं तब से मुझे इस लोक और परलोक में कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। उनके शीश पर मोर पंखों की चन्द्रिका सुशोभित होती है। मस्तक पर केसर का तिलक तीनों लोकों को मोहित करने वाला है । कुण्डल और घुँघराले केशों की लटूरियाँ गालों पर शोभायमान हो रही हैं। कपोल इतने स्निग्ध और सुन्दर हैं कि मकराकृत

जब से मोहि नंदनंदन दृष्टि पड़्यो माई ।
तब से परलोक लोक, कछू ना सोहाई ॥
मोरन की चन्द्रकला, सीस मुकुट सोहै ।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहै ॥
कुण्डल की अलक झलक, कपोलन पर छाई ।
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई ॥
कुटिल भृकुटि तिलक भाल, चितवन में टोना ।
खंजन अरु मधुप मीन, भूले मृग छौना ॥
सुन्दर अति नासिका, सुग्रीव तीन रेखा ।
नटवर प्रभु भेष धर, रूप अति बिसेखा ॥
अधर बिम्ब अरुण नैन, मधुर मंद हँसि ।
दसन दमक दाड़िम दुति, चमके चपला सी ॥
छुद्र घंट किंकिणी, अनूप धुन सुहाई ।
गिरधर के अंग-अंग, 'मीरा' बलि जाई ॥

कुण्डल और लटूरियों का प्रतिविम्ब उसमें इस प्रकार दिखाई देता है जैसे कि मछली सरोवर का त्याग करके तट पर मगर से मिलने आयी हो। मदनमोहन की कटीली भौहें हैं, मस्तक पर सुन्दर तिलक है और जादूभरी चितवन है। नेत्र इतने आकर्षक हैं कि खंजन, भ्रमर, मछली और मृगशावक की उपमा देना निरर्थक है (श्यामसुन्दर के नेत्रों की शोभा के आगे ये सब तुच्छ हैं)। साँवरे की नासिका अत्यधिक मनोहर है और सुन्दर ग्रीवा पर तीन रेखाएँ हैं। श्रेष्ठ नट का वेष धारण किये हुए मेरे प्रभु का रूप अत्यन्त ही अद्वितीय है। बिम्बाफल के सदृश्य लालिमा युक्त ओष्ठ हैं, ललाई लिए हुए चित्तचोर नयन हैं और मुख मण्डल पर मन्द हास्य अपनी आभा बिखेर रहा है। दाँतों की मनोहर कान्ति अनार और नभमंडल में प्रकाशित विद्युत छटा की भाँति है। कटिदेश पर विराजित करधनी की घण्टियों से रसमयी अनुपम ध्वनि श्रवण गोचर होती है। मीरा जी कहती हैं कि अपने गिरधर नागर प्रभु के प्रत्येक अंग की शोभा पर मैं अपने को न्यौछावर करती हूँ।

न मैं पूजा गौर ज्या जी

मीरा जी अपनी सास से कहती हैं कि मैं न तो गौरी पूजन करूँगी और न किसी अन्य देवता का पूजन करूँगी, मैं तो ठाकुर रणछोड़ जी की आराधना करूँगी; आप इस भेद को नहीं जान सकतीं। मैं तो गिरधारी के सिवाय किसी अन्य को देखने पर ही इन नेत्रों की पलकों को काट डालूँगी। जिह्वा द्वारा नन्दनन्दन का भजन न होने पर उस जीभ को काट डालूँगी और श्री हरिनाम को छोड़कर अन्य विषयों का चिन्तन करने पर बुद्धि को काट डालूँगी। वह हृदय जला देने योग्य है जो श्यामसुन्दर के चरण कमलों को छोड़कर किसी और को धारण करता है। जो शीश ब्रजराज श्यामसुन्दर के चरणों में नमन नहीं करता उसका छेदन कर कुआँ में डाल दूँगी। मीरा जी का यह उत्तर सुनकर सास मधुर वाणी से बोली – बहू! अभी तू हमारे कुल की परम्परा, इसके रीति-रिवाजों को नहीं जानती है। हमारे कुल के ये सदा से ही पूजनीय देव

न मैं पूजा गौर ज्या जी ना पूजा अनदेव ।
म्हें पूजा रणछोड़ जी थे कांई जाणो भेव ॥
पल काटो सही इन नैनन के गिरधारी बिना पल अंत निहारे ।
जीभ कटै न भजै नन्दनन्दन बुद्धि कटै हरिनाम बिसारै ॥
'मीरा' कहै जरि जाउ हियौ पद कंज बिना मन औरहिं धारै ।
सीस नवै ब्रजराज बिना वहि सीसहि काटि कुवाँ किन डारै ॥
कही सास तब मंजुल बानी मम कुल रीति बहू नहिं जानी ।
ये कुल देव सदा के म्हारे पूजे रही सुहाग तिहारे ॥
यह सुनि नितै चहुं कित मीरा बोली विधवन लखि मद धीरा ।
इनके पूजत बढ़ै सुहागा यह जो कह्यो मृषा मोहि लागा ॥
ये सब तिय जो तुव घर आई पूजे है हैं देवि सदाही ।
भई कहौ विधवा केहि हेतू मोहि दीखैं द्वै चार निकेतू ॥

(राम रसिकावली, रघुराज सिंह)

रहे हैं, इनकी उपासना करने से तेरे सुहाग की वृद्धि होगी। सास की यह बात सुनकर मीरा ने चारों ओर दृष्टि डाली तो वहाँ उपस्थित विधवा स्त्रियों को देखकर उन्होंने धैर्य धारण करके कहा – माता जी ! आपका यह कथन कि देवी पूजन से सुहाग बढ़ता है, मुझे तो असत्य मालूम पड़ता है क्योंकि आपके घर की इन सभी स्त्रियों ने सदा ही देवी का पूजन किया होगा किन्तु फिर भी मुझे आपके महल में कुछ विधवाएं भी दिखाई पड़ती हैं (देवी पूजन के उपरांत भी इनके वैधव्य का क्या कारण है?)।

माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल

माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल ।
कोई कहै हलको कोई कहै भारो, लियो री तराजू तोल ॥
कोई कहै कालो कोई कहै गोरो, आवत प्रेम के मोल ।
वृंदावन की कुंज गलिन में, लियो री बजंता ढोल ॥
कोई कहै घर में कोई कहै वन में, राधा के संग किलोल ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, पूर्व जन्म के बोल ॥

हे माता ! मैंने तो गोविन्द को खरीद लिया है। कोई कहता है कि वो बड़ा हल्का (हृदय का अत्यन्त कोमल) है, कोई कहता है कि वो पाषाण हृदय वाला अत्यन्त कठोर है लेकिन मैंने तो उसको विवेक के तराजू पर तौलकर ग्रहण किया है। कोई कहता है कि श्यामसुन्दर श्याम (काला) है, कोई कहता है कि नहीं, वह गौर सुन्दर (गोरा) भी है। वस्तुतः वह तो प्रेम की कीमत पर ही वश में होता है। मैंने तो उसे वृन्दावन की कुञ्जगलियों में ढोल बजाकर (कीर्तन के द्वारा) प्राप्त कर लिया। कोई कहता है कि वह अपने घर (यशोदा मैया के पास) रहता है, कोई कहता है कि वन में (गौ चराता) है लेकिन वह तो राधारानी के प्रेम के वशीभूत होकर सदा उन्हीं के साथ नित्य विहार किया करता है। मीराजी कहती हैं कि हे प्रभु गिरधर नागर ! मेरा और आपका पूर्व जन्म का वादा है (मीरा जी पूर्व जन्म की गोपी हैं अतः उनका ठाकुर जी से पूर्व जन्म का प्रेम सम्बन्ध था)।

राणा जी जहर दीयौ हम जाणी

राणा जी ने मुझे विष दिया, इसका मुझे पहले ही पता लग गया था। विषपान के बाद मेरी स्थिति ऐसी हो गयी जैसे सोने को आग में डाल दिया जाय तो वह आग में नहीं जलता (नष्ट नहीं होता) बल्कि शत-प्रतिशत देदीप्यमान सुनहली कान्ति के साथ बाहर निकलता है। मैंने तो लौकिक जगत की लज्जा और कुल की मर्यादा को पानी की तरह बहा दिया है। हे राणा! तुझे यदि मुझसे पर्दा करने की चाह है तो वह अब मैं नहीं कर सकती क्योंकि मैं कृष्ण प्रेम में पागल (मतवाली) हो गयी हूँ, अपने राजवंश की अन्य स्त्रियों को पर्दा करने की सलाह दो। जैसे तरकस से निकला तीर तुरन्त अपने लक्ष्य को बेध देता है वैसे ही कृष्ण विरह का तीर सनसनाता हुआ मेरे हृदय में आकर गड़ गया है। मैं सभी संतों के चरण कमलों पर अपने को न्यौछावर करती हूँ और दृढ़ता से उनके चरणों का आश्रय पकड़ती हूँ। मीरा जी कहती हैं कि प्रभु ने अपनी दासी जानकर विष से मेरी रक्षा की।

राणा जी जहर दीयौ हम जाणी ।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत वारावाणी ।
लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी ॥
अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी ।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी ॥
सब संतन पर तन-मन वारूँ, चरण कमल लिपटाणी ।
'मीरा' को प्रभु राखि लई है, दासी आपणी जाणी ॥

कोई कछू कहे गिरधर सों मेरो मन लागा

कोई कुछ भी कहता रहे , मेरा मन तो गिरधर गोपाल के प्रेम में रंग चुका है (अतः मुझे किसी की परवाह नहीं है) मेरा श्याम सुन्दर के साथ इस तरह से प्रेम हो गया है जैसे सोने को सुहागा द्वारा साफ करने पर उसकी कान्ति और निखर जाती है। अनादिकाल से मोह की निद्रा में सोया हुआ मेरा मन सद्गुरुदेव के सदुपदेश से जाग गया है। विवेक होने के बाद माता-पिता, पुत्र, परिवार और सगे सम्बन्धियों की आसक्ति का बंधन

कोई कछू कहे गिरधर सों मेरो मन लागा ।
ऐसो प्रीत लगी मनमोहन, ज्यूँ सोने में सुहागा ॥
जनम जनम का सोया मनुआ, सतगुरु सब्द सुण जागा ।
मात पिता सुत कुटुंब कबीला, टूट गया ज्यूँ तागा ॥
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, भाग हमारा जागा ।

कच्चे धागे की तरह टूट गया है। मीरा जी कहती हैं – मेरे प्रभु गिरधर नागर ! वास्तव में अब मेरा भाग्य जाग गया है।

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत

मीरा जी कहती हैं कि अरे मेरे मन ! किसी दिन तुम याद करोगे कि प्राचीनकाल में कोई विरक्त संत से मेरी भेंट हुई थी, वे भजनानन्दी महापुरुष एक आसन पर स्थिर चित्त होकर दीर्घ अवधि तक भजन करते थे – इस प्रकार उनकी आराधना की अनुपम रीति थी। मैंने तो यही समझा था कि इन महात्मा का सत्संग मुझे सदा सर्वदा प्राप्त होता रहे गा लेकिन वह तो मुझे बीच में ही छोड़कर चले गये। मुझे यही नहीं पता पड़ा कि कब वह मेरे सम्मुख आये और कब चले गये, विरक्त संत एक ही स्थान पर तो रहते नहीं और न ही उनकी किसी से आसक्ति होती है। मीरा जी कहती हैं – हे मेरे स्वामी गिरधर नागर ! मेरे चित्त में आज भी तुम्हारे चरणों की स्मृति आती है (मैं तुम्हारी याद में विकल हूँ)।

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ।
आसण मांड़ अडिग होय बैठा, याहि भजन की रीत ।
मैं जो जाणूँ जोगी संग चलेगा, छाँड़ गयो अधबीच ॥
आत न दीसै जात न दीसै, जोगी किसका मीत ।
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर चरणन आवै चीत ॥

पल काटो सही इन नैनन के

मीरा जी कहती हैं कि गिरधारी श्याम सुन्दर को छोड़कर अगर मेरे नेत्र कहीं और देखेंगे तो मैं इन नेत्रों की पलकें काट दूँगी। वो जीभ कट जाये जो नन्दनन्दन के नाम का कीर्तन नहीं करती है और वो बुद्धि कट जाए जो हरिनाम को भूल जाती है (श्री हरिनाम की महिमा का मनन नहीं करती है)। मीरा जी कहती हैं कि वह हृदय जल जाये जो प्रभु के चरण कमलों के अतिरिक्त अन्य संसारी विषयों का स्मरण करता है। वह मस्तक जो ब्रजराज श्री कृष्ण के चरण कमलों की वन्दना नहीं करता, उसे काटकर कुँए में फेंक देना चाहिए।

पल काटो सही इन नैनन के, गिरधारी बिना पल अंत निहारें ।
जीभ कटै न भजे नंदनंदन, बुद्धि कटै हरिनाम बिसारें ।
शीश नवै ब्रजराज बिना वहि शीशहि काटि कुवा किन डारें ।
'मीरा' कहै जरि जाउ हियौ पद कंज बिना मन औरहि धारें ।

कभी म्हाँरी गली आव रे

हे मेरे प्यारे मोहन ! कभी मेरी गली भी आओ। आकर के मेरे हृदय में प्रज्वलित विरह की अग्नि का शमन करो। तुम्हारे साँवरे सलोने मुख पर करोड़ों कामदेवों की शोभा न्यौछावर है। तुम्हारे सुन्दर दर्शन के लिये मेरे प्यासे नेत्र तरस रहे हैं, तुम्हारी विरह व्यथा में मैं घायल हिरनी की तरह तड़फ रही हूँ, मेरी इस पीड़ा को कोई जानता भी नहीं है, जिसे इस प्रेम की पीड़ा का अनुभव हुआ है या तो वह विरही इसे जान सकता है या जिस प्रेमास्पद (मोहन) ने यह प्रेम पीड़ा उत्पन्न की है वे उसे समझ सकते हैं। जैसे जल के सूख जाने पर बेचारी मछलियाँ कैसे जी सकती हैं? इसलिए मीरा जी प्रार्थना करती हैं – हे नन्द के लाड़ले लाल ! मेरे ऊपर कृपा करो और अपने सुन्दर मुख कमल का दर्शन कराओ।

कभी म्हाँरी गली आव रे, जिया की तपन बुझाव रे, म्हाँरे मोहना प्यारे ।
तेरे साँवले बदन पर, कई कोट काम वारे ।
तेरा खूबी के दरस पै, नैना तरसत म्हाँरे ॥
घायल फिरूँ तड़पति हिरणि, पीड़ जाणै नहि कोई ।
जिस लागी पीड़ प्रेम की, जिन लाई जाने सोई ॥
जैसे जल के सोखे, मीन क्या जिवें बिचारे ।
कृपा कीजै दरस दीजै, 'मीरा' नन्द के दुलारे ॥

चालां वाही देस प्रीतम पावां

जाओ उसी देश को जहाँ प्रियतम की प्राप्ति होगी, ऐसे उस ब्रज देश को चलो। जब मैं महारानी थी तब राजसी साड़ी पहनती थी लेकिन अब जोगिन रूप में मैंने भगवा वस्त्र पहन लिया है। राजमहल में तो मेरी माँग मोतियों से भरी जाती थी लेकिन अब तो मेरे बालों की जटायें बन गयी हैं। मीरा जी कहती हैं – हे मेरे प्रभु गिरधर नागर ! हे ब्रज नरेश ! अब मेरी विनती को दया करके सुन लीजिए।

चालां वाही देस प्रीतम पावां चालां वाही देस ।
कहा कसूँभी सारी रंगावां, कहो तो भगवां भेस ॥
कहा तो मोतियन मांग भरावां, कहो छिटकावां केस ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, सुणज्यो बिड़द नरेस ॥

छांड़ो लंगर मोरी बहियाँ गहो न

हे लम्पट ! मुझे छोड़ो, मेरी बाँहों को मत पकड़ो। हे गोपाल ! मैं तो पराये घर की स्त्री हूँ, मेरे भरोसे मत रहना। यदि तुम मेरी बाँह पकड़ते हो तो ठीक है लेकिन अपने नुकीले कमल नयनों की चोट से मेरे प्राणों को हरण मत करना। वृन्दावन की कुञ्ज गलियों में मर्यादा का उल्लंघन कर मेरे साथ अनुचित व्यवहार मत करो। मीरा जी कहती हैं – हे स्वामी गिरधर नागर ! मेरे चित्त (मन) में तुम्हारे चरण कमल स्थित हैं, उन्हें कहीं हटा मत लेना।

छांड़ो लंगर मोरी बहियाँ गहो न ।
मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहो न ।
जो तुम मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मोरे प्राण हरो न ॥
वृंदावन की कुंजगली में, रीत छोड़ अनरीत करो न ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चित टारे टरो न ॥

जावा दे जावा दे जोगी किसका मीत

सन्त को जाने दो, वह तो विरक्त हैं, उनका किसी से राग नहीं होता। हे सखी ! सन्त के वियोग में मैं सदा दुःखी रहती हूँ। उनका कहीं आसक्ति न रखने का बड़ा ही कठोर नियम है। मैं तो सदा मधुर, स्नेहयुक्त वाणी से उनसे बोलती, उनका सम्मान करती थी लेकिन उन्होंने मुझसे स्नेह सम्बन्ध नहीं जोड़ा। मैंने सोचा था कि उन महात्मा से मेरा सदा सम्बन्ध बना रहेगा लेकिन वह तो मुझे बीच में ही छोड़कर चले गये। मीरा जी कहती हैं कि मेरे प्रभु श्यामसुन्दर ही प्रेम का निर्वाह करने वाले मेरे सच्चे मित्र हैं।

जावा दे जावा दे जोगी किसका मीत ।
सदा उदास रहै मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत ।
बोलत वचन मधुर से मानूँ, जोरत नाहीं प्रीत ॥
मैं जाणूँ या पार निभैगी, छाँड चले अधबीच ।
'मीरा' के प्रभु स्याम मनोहर प्रेम पियारा मीत ॥

नहिं ऐसो जनम बारम्बार

यह दुर्लभ मानव जन्म बार-बार नहीं मिलने वाला। पूर्व जन्मों के कुछ पुण्य उदित हुए जो जीव का मनुष्य रूप में अवतार हुआ, लेकिन यह है अत्यन्त क्षणभंगुर, बहुत ही शीघ्र शरीर की आयु

ढल जाती है और इसकी समाप्ति होने में (मृत्यु होने में) देर नहीं लगती, जिस प्रकार वृक्ष की शाखा से टूटा हुआ पत्ता पुनः उससे नहीं जुड़ सकता, उसी प्रकार एक बार मनुष्य जन्म व्यर्थ गँवाने के बाद (मृत्यु के बाद) दुबारा मानव देह की प्राप्ति असम्भव है। यह भवसागर अत्यन्त भयंकर और अनन्त है, इसमें ऊँची-ऊँची भीषण लहरें सदा उठती रहती हैं, राम नाम का आश्रय लेकर इस भव समुद्र को शीघ्र ही पार कर ले। सद्गुरुदेव के उपदेश से उत्पन्न ज्ञान तो चौसर है और उसमें (गोट जाने के ४ रास्ते चौहट) चौहटे मण्डल हैं, सुरत (प्रेम) का पासा है। इस तरह से इस दुनिया में परमार्थ रूपी पासे का खेल हो रहा है, इसमें तुझे विजय और पराजय जो रुचे उन्हें ग्रहण कर ले। ज्ञानी साधु, सन्त और महन्त मनुष्यों के कल्याण हेतु बार-बार दिव्य उपदेश देते रहते हैं। गिरधरलाल की दासी मीरा जी कहती हैं कि चार दिन के अत्यन्त अल्पकालीन मनुष्य जीवन को व्यर्थ नष्ट मत करो, इसमें अपना उद्धार अवश्य ही कर लो, फिर ऐसा समय नहीं आने वाला।

नहिं ऐसो जनम बारम्बार ।
का जानूँ कछु पुण्य प्रगटै मानुषा अवतार ॥
बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल जात न लागे बार ।
बिरछ के ज्यों पात टूटै नहीं पुनि डार ॥
भौ सागर अति जोर कहिए अनंत ऊंची धार ।
राम नाम का बांध बेड़ा उतर परले पार ॥
ज्ञान चौसर मण्डी चौहटे सुरन पासा सार ।
या दुनिया में रची बाजी जीत भावैं हार ॥
साधु संत महन्त ज्ञानी चलत करत पुकार ।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर जिवणां दिन चार ॥

नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात

सारी रात कृष्ण विरह की व्यथा के कारण मैं सो नहीं सकी और इसी प्रतीक्षा में रही कि कब सुबह हो? थोड़ी सी नींद लगी भी तो स्वप्न में श्यामसुन्दर को देखकर सुध-बुध खोकर जाग उठी और सामने चाँदनी रात दिखी, जो मुझे बिलकुल भी नहीं सुहायी। हे दीनानाथ ! तुम्हारे वियोग की असह्य वेदना मुझे तड़फा रही है, अब मुझे तुम्हारे दर्शन कब होंगे? तुम्हारे प्रेम में मैं ऐसी दीवानी बन गयी कि मुझे शरीर की भी सुधि नहीं रही, मेरे हृदय के भाव को संसार में कोई नहीं जानता। मीरा जी कहती हैं कि जिसको अनुभव

नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात किस विधि होय प्रभात ।
चमक उठी सपने सुध भूली, चन्द्रकला न सुहात ।
तलफ-तलफ जिव जाय हमारो, कब रे मिले दीनानाथ ॥
भइ हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात ।
'मीरा' कहै बीती सोई जानै, मरण जीवण उन हाथ ॥

हुआ हो वही परिस्थिति की वास्तविकता को जानता है, अब मेरा तो जीवन और मृत्यु प्रभु के हाथ में है।

नैना लोभी रे बहुरि

नैना लोभी रे बहुरि सके नहिं आय ।
रोम-रोम नख सिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाय ॥
मैं ठाढ़ी गृह आपणे रे, मोहन निकसे आय ।
सारंग ओट तजै कुल अंकुस, बदन दिय मुस्काय ॥
लोग कुटुम्बी बरज बरजहिं, बतियाँ कहत बनाय ।
चंचल निपट अटक नहिं मानत, पर हथ गये बिकाय ॥
भलि कहौ कोई बुरी कहौ मैं, सब लई सीस चढ़ाय ।
'मीरा' प्रभु गिरिधरन लाल बिन, पल भर रह्यो न जाय ॥

मेरे लोभी नेत्र श्याम सुंदर के दर्शन करने पर लौटाने पर वापस नहीं लौटते । गिरिधारी के नख से शिख तक, रोम-रोम की समस्त रूप माधुरी को अच्छी तरह देखने के बाद भी देखना छोड़ते नहीं, लालचवश और देखना चाहते हैं। मैं अपने गृह द्वार पर खड़ी थी, इतने में रंगीले मोहनलाल मेरे सामने से आ निकले। जिस प्रकार वीणा की मधुर ध्वनि से मदहोश हुए हिरन की नाभि से जीवित अवस्था में ही शिकारी कस्तूरी निकाल लेता है, उसी प्रकार मैंने भी श्री कृष्ण के प्रबल आकर्षण के वशीभूत होकर कुल-मर्यादा के अंकुश को तिलांजलि दे दी है। परिवार के लोग मुझे बहुत रोकते हैं, ताड़ना देते हैं और अनेक तरह से मेरी निन्दा करते हैं, किन्तु ये मेरे चंचल नेत्र श्यामसुन्दर की आसक्ति को नहीं छोड़ते हैं, ये तो मेरे वश में नहीं रह गये हैं, कृष्ण के हाथों में बिक चुके हैं, चाहे कोई मेरी प्रशंसा करो या निन्दा करो, मैं समभाव से सब सहन कर लूँगी। मीरा जी कहती हैं – अपने स्वामी गिरधर लाल के बिना अब मुझसे पलभर भी नहीं रहा जाता।

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखि ही न जाई ।
कलम भरत मेरो कर कंपत हियड़ो रही घराई ।
बात कहूँ मोहे बात न आवै, नैन रहे झराई ॥
किस बिधी चरण कमल मैं गहे हौं, सबहि अंग थरराई ।
'मीरा' कहै प्रभु गिरिधर नागर, सबहि दुःख बिसराई ॥

मैं अपने स्वामी को कैसे पत्र लिखूँ, मुझसे लिखते ही नहीं बनता। जैसे ही कलम लेकर लिखने बैठती हूँ कि मेरा हाथ काँपने लगता है और हृदय की धड़कन तेज हो जाती है। मुख से कुछ कहना चाहती हूँ तो कह नहीं पाती क्योंकि आँखों से आँसू बहने लगते हैं। ठाकुर जी के

चरण कमलों का मैं स्पर्श कैसे करूँ, मेरा सारा शरीर काँपने लगता है। मीरा कहती हैं कि मेरे प्रभु गिरधर नागर ने मेरे सारे दुःखों को दूर कर दिया है।

बरजी मैं काहू की

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ ।
सुनो री सखी तुम चेतन होइ कै, मन की बात कहूँ ॥
साधु-संगति कर हरि सुख लीजै, जग सूँ दूर रहूँ ।
तन-धन मेरो सबहि जावो, भलो मेरो सीस लहूँ ॥
मन मेरो लागो सुमिरन सेती, सबका मैं बोल सहूँ ।
'मीरा' के प्रभु हरि अविनाशी, सतगुरु सरण गहूँ ॥

कृष्ण प्रेम के मार्ग पर चलने से मुझे कोई कितना ही क्यों न रोके, मैं नहीं रुकूँगी। हे सखी ! तुम सावधान होकर सुन लो, मैं तुमसे अपने हृदय की बात कहती हूँ। सन्त समागम करके मैं अनन्त आनन्द सिन्धु श्री हरि का सुख प्राप्त करूँगी और विषयी जगत से दूर रहूँगी। ऐसा करने में चाहे मेरा तन नष्ट हो, चाहे धन नष्ट हो और भले ही कोई मेरा सिर काट दे, मैं इसके लिए सहर्ष तैयार हूँ। मेरा मन तो गिरधर लाल के स्मरण में तन्मय हो गया है। कोई कितनी भी मेरी निन्दा करे, कटु वचन कहे , मैं सब सहन करूँगी (प्रति उत्तर नहीं दूँगी) मीरा जी कहती हैं कि मेरे प्रभु श्री हरि अविनाशी हैं, उनकी प्राप्ति के लिए मैं अपने सद्गुरुदेव की शरणागति ग्रहण करूँगी।

मैं तो म्हारा रमैया

मैं तो म्हारा रमैया ने देखबो करुँ री ।
तेरो ही उमरण तेरो ही सुमिरण तेरी हो ध्यान धरूँ री ॥
जहां-जहां पांव धरुँ धरती पर तहां-तहां निरत करूँ री ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर चरणा लिपट परूँ री ॥

मैं तो सदा सर्वदा अपने मनमोहन का ही दर्शन किया करती हूँ। हे कन्हैया ! हर समय मैं केवल तेरा ही स्मरण करती हूँ, तेरा ही ध्यान करती हूँ। पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ भी मैं अपने चरण रखती हूँ, वहाँ-वहाँ मैं नृत्य करती हूँ । मीरा जी कहती हैं – हे मेरे प्रभु गिरधर नागर ! मैं तो तुम्हारे चरण कमलों से अनन्य भाव से लिपट गयी हूँ।

भज मन चरण कमल अविनाशी

भज मन चरण कमल अविनाशी ।
जेतइ दीसै धरण गगन बिच, तेतइ सब उठ जासी ।
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हे, कहा लिए करवत कासी ॥
इस देही का गरव न करना, माटी में मिल जासी ।
यो संसार चहर की बाजी, सांझ पड़्यां उठ जासी ॥
कहा भयो है भगवा पहरवां, घर तज भये सन्यासी ।
जोगी होय भगत नहिं जाणी, उलट जनम फिर आसी ॥
अरज करूँ अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, काटो जम की फाँसी ॥

रे मन ! अविनाशी गोपाल जी के चरण कमलों का भजन कर। इस पृथ्वी से लेकर आकाश तक दृश्यमान सम्पूर्ण जगत नाशवान है। अनेक तीर्थों में भ्रमण करने, व्रत करने और काशी में करवट लेने[1] आदि से कुछ कल्याण नहीं होगा। इस नश्वर शरीर का अभिमान कभी मत करना। मृत्यु के बाद एक दिन यह धूल में मिल जायेगा। यह संसार तो चौपड़ की बाजी के समान है, (जैसे चौपड़ खेलने वाले दिनभर खेलते हैं और शाम को उनका खेल समाप्त हो जाता है) एक दिन इसका अंत हो जायेगा। घर का त्याग कर सन्यासी बनने और भगवा वस्त्र पहनने से क्या होगा, जबतक हृदय में निष्काम भक्ति नहीं है। योगी बनकर भक्ति का महत्त्व नहीं जाना तो मृत्यु के पश्चात पुनर्जन्म होगा। हे श्यामसुन्दर ! मैं तुम्हारी दासी हूँ और हाथ जोड़कर तुमसे विनती करती हूँ। हे मीरा के प्रभु गिरधर नागर ! यमराज के विकट पाश से मुझे मुक्त करो।

मीरा लागो रंग हरि

मीरा जी कहती हैं कि मेरे ऊपर तो श्रीहरि प्रेम का रंग चढ़ गया है, संसार के अन्य रंगों का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मेरा चूड़ा (आभूषण) तो तिलक और माला है तथा शील-गुण ही मेरा श्रंगार है, व्रत है। अन्य श्रंगार मुझे बिल्कुल भी पसन्द नहीं हैं। मेरे गुरु ने मुझे यही दिव्य ज्ञान प्रदान किया है। चाहे कोई मेरी निंदा करे, चाहे प्रशंसा करे, मैं तो केवल गोविन्द का ही गुणगान करूँगी। जिस परमार्थ के मार्ग पर सन्तजन चले हैं और जिस मार्ग का उन्होंने मुझे उपदेश किया, मैं तो उसी मार्ग पर चलूँगी।

मैं न तो चोरी करती हूँ और न किसी जीव को सताती हूँ, ऐसे में कोई मेरा क्या नुकसान कर सकता है? हाथी की सवारी छोड़कर अब मैं गधे की सवारी नहीं करूँगी (भगवान् की भक्ति को

[1] काशी के कुआँ पर मुक्ति के लिए लोग किनारे लेट जाते थे और करवट बदलने पर उस कुएँ में गिरकर प्राण त्याग करते थे। जन-मान्यतानुसार ऐसा करने पर उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती थी।

छोड़कर मैं संसारी लोगों के मार्ग का अनुसरण नहीं करूँगी)। हे राणा ! तुम जो कहते हो वह कोई सत्य मार्ग नहीं है। मैं सती नहीं होऊँगी, अपने अविनाशी पति गिरधर का गुण गाऊँगी, मेरा मन तो उन यशस्वी लक्ष्मीपति ने मोह लिया है। राणा जी ! मेरा, तुम्हारा जेठ-बहू का नाता (जैसा तुम सोचते हो वह पूरी तरह) असत्य है। मेरे गिरधर गोपाल सर्वव्यापी हैं, वे मेरे स्वामी हैं और मैं उनकी सेविका हूँ। गिरधर ही मेरे प्रियतम, प्राणनाथ हैं। मेरा धन भी गिरधर गोपाल हैं, मेरे माता-पिता, भाई सब कुछ वे ही गिरधारीलाल हैं। मीराबाई कहती हैं – राणा जी ! तुम अपने हठ के पक्के हो तो मैं अपने हठ पर दृढ़ हूँ। (तुम अपने रास्ते चलते हो और मैं भी अपना रास्ता नहीं छोड़ूँगी)

मीरा लागो रंग हरि, औरन रंग अटक परी ।
चूड़ो म्हारे तिलक अरु माला, सील बरत सिंगारो ।
और सिंगार म्हारे दाय न आवै, यो गुरु ग्यान हमारो ॥
कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हें तो गुण गोविन्द का गास्यां ।
जिण मारग म्हांरा साध पधारे, उण मारग म्हे जास्यां ॥
चोरी न करस्यां जिव न सतास्यां, कांई करसी म्हांरो कोई ।
गज से उतर के खर नहि चढ़स्यां, यो तो बात न होई ॥
सता न होस्यां गिरधर गास्यां, म्हारो मन मोह्यो धन नामी ।
जेठ बहू को नातो न राणाजी, हूं सेवक थे स्वामी ॥
गिरधर कंत गिरधर धनि म्हांरे, मात-पिता वीर भाई ।
थे थांरे मैं म्हारे राणाजी, यूं कहे 'मीरा' बाई ॥

मैं तो सांवरे के रंग राची

मैं तो अपने साँवरे-सलोने श्यामसुन्दर के रंग में रंग गयी हूँ। भक्तिमय श्रंगार करके, पाँवों में घुँघरू बाँधकर और लोक-लज्जा का त्यागकर मैं नृत्य करती हूँ। संतजनों के संसर्ग से मेरी कुमति नष्ट हो गयी है और मैंने सच्ची भक्ति सीख ली है तथा सच्ची भक्त बन गयी हूँ। दिन-रात श्रीहरि का गुणगान करने से मैं कालरूपी भयंकर सर्प से बच गयी हूँ। श्रीगोपाल जी के बिना मुझे सारा जगत नीरस प्रतीत होता है और सभी बातें झूठी मालूम पड़ती हैं। मीरा जी कहती हैं कि श्री गिरधरलाल के प्रति मैंने रसमयी भक्ति का निर्वाह किया है।

मैं तो सांवरे के रंग राची ।
साज सिंगार बाँधि पग घुँघरू लोक लाज तजि नाची ॥
गई कुमति लई साधू संगति भगत रूप भई सांची ।
गाय-गाय हरि के गुण निशदिन काल व्याल सों बांची ॥
उण बिन सब जग खारो लागत और बात सब कांची ।
'मीरा' श्री गिरिधरण लाल सों भगति रसीली जांची ॥

मीरा हरि मन मानी

प्रेम की अनन्त आनन्दमयी दिशा की ओर विहार करने की मीरा के मन ने ठान ली है। जब-जब उस प्रेम नगर की याद आती है तो मेरी आँखों में आँसू भर आते हैं। हृदय में विरह की पीड़ा तीर के समान चुभती है और अधीरता के कारण मीठी टीस उठकर विकल बना देती है। प्रेम की विकलता के कारण रात-दिन मुझे नींद नहीं आती है और अन्न-जल का सेवन भी मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है। शरीर के भीतर हृदय में विरह की पीड़ा मुझे इस तरह व्यथित करती है कि मैं रात भर जागती रहती हूँ, सो नहीं पाती। ऐसा कोई वैद्य अर्थात् सद्गुरु मिल जाये जो पारदर्शी विद्वान् हो, जिसे लौकिक-पारलौकिक जगत के विषय में पूर्ण तत्वज्ञान हो, उससे मैं अपनी पीड़ा को बता सकती हूँ और वही मेरे कष्ट को दूर भी कर सकता है, जिससे मुझे दुबारा जन्म-मरण के चक्र में न आना पड़े। मैं तो उस भगवद् धाम के रहस्य को बताने वाले तत्वज्ञ संत की खोज करती हूँ, लेकिन उस धाम की महिमा का वर्णन कोई नहीं कर पाता। खोजते-खोजते अंत में मुझे सद्गुरुदेव के रूप में संत शिरोमणि रैदास जी मिल गये, जिन्होंने मुझे उस प्रेम धाम का संकेत, उसकी निशानी पूर्णरूपेण प्रदान कर दी। मुझे जब अपने प्रियतम गिरधर गोपाल की प्राप्ति होगी तभी मेरी पीड़ा दूर हो पायेगी। मैंने अपने अस्तित्व को पूरी तरह मिटा दिया है, संसार से पूर्ण विरक्त हो चुकी हूँ और इस तरह मुझे अपने घर अर्थात् भगवद्धाम का पूर्ण बोध हो चुका है।

मीरा हरि मन मानी सुरत सैल असमानी ।
अब जब सुरत लगे बा घर की, पल पल नैनन पानी ।
ज्यों हिय पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावे अन्न न पानी ।
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी ॥
ऐसा वैद मिले कोई भेदी, देस विदेस पिछानी ।
तासों पीर कहूं तन फेरी न भरसौ खानी ॥
खोजत फिरौं भेद वा घर को कोई न करत बखानी ।
रैदास संत मिले मोहे सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी ॥
मैं मिल जाए पाय पिय अपना तब मोरी पीर बुझानी ।
'मीरा' खाक खलक सिर डारि मैं अपना घर जानी ॥

मैं अपनो मन हरि सूं जोरयो

मैंने अपने मन को श्रीहरि में पूर्णरूपेण तन्मय कर दिया है और जगत के सम्पूर्ण विषयों से मन को हटा लिया है। श्री गोपाल जी से मेरा प्रेम शाश्वत है जैसे बाजीगर और उसके जमूड़े के खेल में आपस का सम्बन्ध होता है। जब मैं संत दर्शन को चली तब राणा मुझे तलवार लेकर मारने के

मैं अपनो मन हरि सूं जोरयो हरी सूं जोर सकल सूं तोर्यो ।
मेरी प्रीत निरन्तर हरि सूं ज्यूं खेलत बाजीगर गोर्यो ।
जब मैं चली साध के दरसन तब राणो मारण दोर्यो ॥
जहर देन की बात बिचारी निर्मल जल में लै विष घोलयो ।
जब चरणोदक सुण्यो सरवणा राम भरोसे मुख में ढ़ोर्यो ॥
नाचत लगी तब घूंघट कैसो लोक लाज तिणका ज्यूं तोर्यो ।
नेकी बदी हूं सिर पर धारी मन हस्ती अंकुश दै मोर्यो ॥
प्रगट निसान बजाय चली मैं राणा राव सकल जग जोर्यो ।
'मीरा' सबल धरणी के सरणे कहा भयो भूपति मुख मोर्यो ॥

लिए दौड़ा। इसके बाद उसने मुझे विष देने की योजना बनायी और शुद्ध जल में विष घोलकर मेरे पास भेजा। जब मैंने सुना कि यह ठाकुर जी का चरणामृत है तो मैंने उन्हीं के भरोसे विष का प्याला मुख से लगा लिया। विष पान के बाद मेरा प्रेम का नशा बढ़ा और मैं प्रेमावेश में खुलकर नृत्य करने लगी। जब नृत्य करने लगी तो घूँघट का क्या काम? मैंने मुख से घूँघट हटा दिया और इस प्रकार मैंने इस जगत की तुच्छ लाज-शर्म को तृण के समान तोड़ दिया। प्रशंसा और बदनामी मैंने समभाव से स्वीकार कर ली। मन रूपी पागल हाथी को सद्गुरु के ज्ञान रूपी अंकुश से मैंने नियंत्रण में कर लिया है। अब तो मैं डंके की चोट पर राजकुल की मर्यादा और लोकलाज को पूर्णरूप से तिलांजलि देकर भक्ति मार्ग पर चल पड़ी हूँ। यह समाचार पाकर राणा ने अपने सामंतों के साथ मुझे समाप्त करने के लिए बैठक बुलायी। मीरा जी कहतीं हैं कि मैं तो सर्वशक्तिमान लक्ष्मीपति अपने गिरधर गोपाल की शरण में निर्भय हूँ, ये तुच्छ राजा मुझसे नाराज होकर मेरी क्या हानि कर सकते हैं?

म्हारे नैणां आगे रहीजो

हे श्याम गोविन्द ! कृपा करके सदा मेरी आँखों के सामने रहा करो। कबीरदास जी अनाथ के रूप में पैदा हुये थे, तुम्हारी ही कृपा से उन्हें एक व्यक्ति घर ले आया और पिता की तरह उनका लालन-पालन किया।

म्हारे नैणां आगे रहीजो जी श्याम गोविन्द ।
दास कबीर घर बालद जो लाया, नामदेव का छान छवंद ।
दास धना को खेत निपजायो, गज को टेर सुनंद ॥
भीलणी का बेर सुदामा का तंडुल, भर-भर मूंठी बुकंद ।
कर्मा की खिचरी आरोग्यो होई परसण पावन्द ॥
सहस गोप बिच श्याम बिराजे ज्यों तारा बिच चंद ।
सब संतो का काज सुधारयों 'मीरा' सों दूर रहन्द ॥

तुम्ही ने संत नामदेव की छान छायी थी। तुम्ही ने धन्ना भक्त के खेत में बिना बीज डाले ही गेहूँ की फसल उगा दी। तुमने ही आर्त गजराज की पुकार सुनकर उसकी रक्षा की। तुमने भीलनी शबरी के जूठे बेर को प्रेम से खाया और सुदामा के मुट्ठी भर सड़े चावल को उनसे छीनकर खा लिया। तुमने कर्माबाई की खिचड़ी को बड़ी प्रसन्नता के साथ आरोगा। ब्रजभूमि में

सहस्त्रों गोप-बालकों के मध्य में तुम्हारी शोभा इस प्रकार होती है जैसे तारों के बीच में चन्द्रमा। मीरा जी कहती हैं कि तुमने सभी संत-भक्तों का काम बनाया लेकिन मुझसे दूर रहा करते हो (मुझे तो दर्शन भी नहीं देते)।

रमैया बिण नींद न आवै

गिरधारी के बिना मुझे कभी नींद ही नहीं आती है। नींद नही आती है किन्तु उनका विरह सताता है और प्रेम की आँच हृदय को तपाती रहती है। कृष्ण पिया रूपी ज्योति के बिना हृदयरूपी मंदिर में सदा अन्धेरा बना रहता है, बाहरी दीपक से यह अंधकार नहीं जायेगा। कृष्ण प्यारे के बिना मेरी सेज सूनी है, सारी रात जागते ही बीत जाती है। पता नहीं प्रियतम कब मेरे घर आयेंगे।

रमैया बिण नींद न आवै ।
नींद न आवै विरह सतावै प्रेम की आँच ढुलावै ॥
बिन पिय जोत मन्दिर अंधियारो दीपक दाय न आवै ।
पिया बिन मेरी सेज अलूनी जागत रैण बिहावै ॥
पिया कब रे घर आवै ।
दादुर मोर पपीहिरा बोले कोइल सबद सुनावै ॥
घुमड़ घटा ऊपर होई आइ दामिन दसक डरावै ।
नैन झर लावै ॥
कहा करूँ कित जाऊँ मोरि सजनी वेदन कूण बुतावै ।
विरह नागण मोरि काया डसि है लहर-लहर जीव जावै ॥
जड़ी घस लावै ।
को है सखी सहेली सजनी पिया कूँ आन मिलावै ॥
'मीरा' कूँ प्रभु कब रे मिलोगे मन मोहन मोहि भावै ।
कबै हँसकर बतलावै ॥

वर्षा ऋतु में मोर, पपीहा और मेढकों के स्वर सुनायी पड़ रहे हैं। कोयल भी मीठे शब्द सुना रही है। आकाश में काले बादलों की घटा छा गयी है और बिजली की चमक मुझे डरा देती है। मेघ तो वर्षा कर रहे हैं, किन्तु मेरे नेत्रों से प्रभु विरह के कारण आँसुओं की झड़ी लगी है। हे सखी ! मैं कहाँ जाऊँ, किसको अपनी वेदना बताऊँ। कोई मेरा कष्ट नहीं जानता और न ही कोई मेरी पीड़ा का हाल प्रियतम को बता सकता है। विरह की काली नागिन ने मेरे शरीर को डस लिया है। थोड़ी-थोड़ी साँस चल रही है, श्यामरूपी वैद्य यदि अपनी जड़ी घिसकर लगावें तो पूर्ण स्वस्थ हो जाऊँगी। ऐसी मेरी कौन सी प्रिय सखी है, जो प्रियतम से मेरा मिलन करा दे। मीरा जी कहती हैं – हे मेरे स्वामी ! तुम मुझे कब मिलोगे, हे मनमोहन ! मेरे हृदय को तो केवल तुम्ही ने मोहित किया है, अब कब आकर मुझसे हँस कर बात करोगे।

मैं तो तेरी शरण परी रे रामा

हे प्रभु ! मैं तो तुम्हारी शरण में आ पड़ी हूँ, अब तुम जैसे भी उचित समझो, मेरा उद्धार करो। अड़सठ प्रकार के तीर्थों में भ्रमण कर आयी लेकिन मेरे मन को चैन नहीं मिला। हे मुरारी ! ध्यान से सुनो, इस संसार में मेरा कोई नहीं है। अपने प्रभु के भरोसे रहने वाली दासी मीरा को यम के बंधन से मुक्त कर दो।

मैं तो तेरी शरण परी रे रामा, ज्यूं जाणे ज्यूं तार ।
अड़सठ तीरथ भ्रमि-भ्रमि आयो, मन नहिं मानी हार ॥
या जग में कोई नहिं अपणा, सुनियो श्रवण मुरार ।
'मीरा' दासी राम भरोसे जम का फंदा निवार ॥

हेली सुरत सुहागिनी नार

अरी सुहागिनी नारियों ! मेरा प्रेम तो श्यामसुन्दर से हो गया है। मैंने प्रेम का तो लहंगा पहना है और प्रेम सुहाग के अन्य चिह्न धारण कर लिए हैं, शुभ घड़ी बीती जा रही है। यह सांसारिक धन और यौवन तो क्षणिक है, इसको नष्ट होने में देर नहीं लगती है। मैं तो श्याम रूपी वर को वरण करूँगी जिससे मेरी चूड़ियाँ (मेरा सुहाग) अमर हो जाए। राम नाम की तो मेरी चूड़ियाँ हैं और निर्गुणा भक्ति का मैंने आँखों में काजल लगाया है। मीराजी कहती हैं – हे मेरे स्वामी गिरधर नागर ! मैं तो तुम्हारे चरणों की दासी हूँ।

हेली सुरत सुहागिनी नार सुरत मेरी स्याम सों लगि ।
लगनी लहंगा पहर सुहागिन बीती जाय बहार ॥
धन योवन दिन चार का है जात न लागे बार ।
बर बरौंला राम जी म्हारो चूड़ो अमर हो जाए ॥
राम नाम का चूड़लो हो निरगुण सुरमो सार ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा की मैं दास ॥

आली सांवरे की दृष्टि

हे सखी ! श्यामसुन्दर की तिरछी चितवन ऐसी है जैसे प्रेम की कटारी हो। उस चितवन की चोट से मैं ऐसी घायल हुई कि मुझे अपने शरीर का भी होश नहीं रहा। मेरे तन और मन में ऐसा प्रेम छा गया कि मैं बिल्कुल मतवाली सी हो गयी। दो-चार सखियाँ भी मुझे ऐसी ही मिल गयीं कि

मैं विचित्र ढंग से प्रेम में दीवानी बन गयी। वृन्दावन की कुञ्जों में विहार करने वाले उस कुञ्जबिहारी को मैं अच्छी प्रकार से जानती हूँ। जैसे चकोर का चन्द्रमा से प्रेम होता है, पतंगे का दीपक से प्रेम है और जिस प्रकार मछली का जल से प्रेम होता है, उसी प्रकार से मेरा प्रेम गिरधर नागर प्रभु से है। हे श्यामसुन्दर! तुम्हारे चरणों में पड़कर मैं तुमसे विनती करती हूँ कि मुझ मीरा को सदा – सर्वदा की अपनी दासी समझो।

आली सांवरे की दृष्टि मानो प्रेम की कटारी है ।
लागत बेहाल भई तन की सुधि बुधि गई ।
तन मन व्यापो प्रेम मानो मतवारी है ॥
सखियां मिल हुई चारी बावरी सी भई न्यारी ।
हूँ तो वाको नीके जानो कुँज को बिहारी है ॥
चँद को चकोर चाहे दीपक पतँगदा है ।
जल बिना मीन जैसे तैसे प्रीत प्यारी है ॥
विनती करो हे स्याम लागों मैं तुम्हारे पांव ।
'मीरा' प्रभु ऐसे जानो दासी तुम्हारी है ॥

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूं

मैं अपने परम प्रियतम गिरधर को पत्र लिख-लिखकर भेजा करती हूँ लेकिन उन्होंने कभी मुझे कोई सन्देश नहीं भेजा, जान-बूझकर प्रेम का दीपक बुझा दिया। जिस रास्ते से वह आयेंगे, प्रतिदिन मैं उसे झाड़ा करती हूँ, प्रतीक्षा करती हूँ कि कब इस पथ से गिरधारी आयेंगे, उनके विरह में सदा रोते रहने से मेरी आँखें लाल हो गयी हैं। रात-दिन उनके वियोग में मुझे चैन नहीं मिलता है, मेरा हृदय विरह की असह्य वेदना से फटा जाता है। मीरा जी कहती हैं – हे मेरे स्वामी! आप मेरे पूर्व जन्म के साथी हो, मुझे कब मिलोगे।

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूं मैं लिख-लिख भेजूं रे पाती ।
स्याम सनेसो कबहूँ न दीन्हों, जानि बूझ गुझ बाती ।
डगर बुहारूँ पंथ निहारूँ रोइ-रोइ अखियाँ राती ॥
रात-दिवस मोहि कल न परत है हियो फटत मेरी छाती ।
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे पूरब जनम के साथी ॥

मेरे मन राम नाम बसी

मेरे हृदय में राम नाम बस गया है। हे श्यामसुन्दर! तेरे प्रेम

मेरे मन राम नाम बसी ।
तेरे कारण श्याम सुन्दर सकल लोक हंसी ।
कोई कहै मीरा भई बौरी, कोई कहै कुल नासी ।
कोई कहै मीरा दीप आग री, नाम पिया सूं रसी ।
खांड धार भक्ति की न्यारी, काटि है जम की फांसी ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर सब्द सरोवर धंसी ॥

में तन्मय होने के कारण सारा संसार मुझ पर हँसता है। कोई कहता है कि मीरा पागल हो गयी है, कोई कहता है कि मीरा अपने कुल की नाशक है। कोई कहता है कि मीरा दीपक की आग है। कोई कुछ भी कहता रहे, मैं तो सदा-सर्वदा अपने पिया मनमोहन का नाम रटती हूँ। भक्ति रूपी तलवार की धार अमोघ है, यह यमराज की फाँसी को काट डालेगी। मीरा जी कहती हैं कि हे प्रभु गिरधर नागर ! मैं तो शब्द के सरोवर में धँस गयी हूँ अर्थात् वाणी से सदा तुम्हारे निर्मल यश का गान करती हूँ।

मेरो मन लागो हरि जू सूँ

मेरो मन लागो हरि जू सूँ मैं अब न रहूँगी अटकी ।
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्हों ज्ञान की गुटकी ।
चोट लगी निज नाम हरि की, म्हारे हिवड़े खटकी ॥
माणिक मोती परत न पहिरुं, मैं कब की नटकी ।
गेणो तो म्हारे माला दोबड़ी, और चन्दन की कुटकी ॥
राज कुल की लाज गँवाई, साधां के संग भटकी ।
नित उठ हरि जू के मंदिर जास्यां, नाच्यां दे-दे चुटकी ॥
भाग खुल्ये म्हारो साध संगत सूँ, सांवरिया की बटकी ।
जेठ बहु को काण न मानूं, घूँघट पड़ गई पटकी ॥
परम गुरां के सरण रहस्यां, परणाम करां लुटकी ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरन सूं गुटकी ॥

मेरा मन तो श्रीहरि के रंग में रंग चुका है, अब मैं भव-बन्धन में नहीं फँस सकती हूँ। मुझे तो संत रैदास जी जैसे परम सद्गुरु मिल गये, जिन्होंने मुझे ज्ञान का दिव्य गुटका प्रदान कर दिया। मुझे तो राम-नाम की चोट लग गयी है, जो मेरे हृदय के अन्दर तक घायल कर गयी है। हीरे-मोती, मणियाँ आदि बहुमूल्य रत्न मैं नहीं धारण करती, इनको ग्रहण करना तो मैंने बहुत पहले ही छोड़ दिया है। मेरा आभूषण तो दोहरी माला (कंठी) और चन्दन का तिलक है। मैंने तो राजकुल की मर्यादा को पूरी तरह तिलाञ्जलि दे दी है और संतों के साथ कथा-कीर्तन के रस में मतवाली बनी रहती हूँ। नित्य प्रातःकाल उठकर मैं श्रीहरि के मंदिर जाती हूँ और करतल ध्वनि के साथ ठाकुर जी के आगे नृत्य करती हूँ। संत संगति के कारण मेरा भाग्योदय हो गया है और मैं साँवरे श्यामसुन्दर की हो गयी हूँ। राणा के प्रति मैं 'जेठ-बहू' का नाता नहीं मानती और घूँघट को मैंने पूरी तरह त्याग दिया है। मैं अपने परमगुरुदेव की शरण में सदा रहती हूँ और इसका परिणाम क्या होगा, इसके प्रति मैं बेपरवाह हूँ। मीरा जी कहतीं हैं – अपने प्रभु गिरधर नागर की कृपा से मैं जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो गयी हूँ।

मैं हरि बिन क्यूं

हे माँ ! मैं हरि के बिना कैसे जी सकती हूँ? जिस प्रकार घुन (कीड़ा) लकड़ी को खा जाता है, उसी प्रकार मैं पिया के प्रेम में पागल हो गयी हूँ (कृष्णप्रेम देहाभिमान को खा गया है) । संसार की कोई औषधि मेरे इस पागलपन के रोग को ठीक नहीं कर सकती है। कछुआ और मेढक जल से उत्पन्न होते हैं और जल में ही निवास करते हैं लेकिन वास्तविक प्रेम तो मछली का होता है, जो जल से बिछुड़ते ही मर जाती है। (यही हाल मेरा भी है, कृष्ण के विरह में मैं दिन-रात तड़पा करती हूँ) प्रियतम को ढूँढने के लिए वन-वन में भटकती रही, किसी एक वन में मुझे मुरली की धुन सुनाई पड़ी। मीरा जी कहती हैं – वहाँ जाने पर मुझे आनन्दस्वरुप प्रभु गिरधरलाल के दर्शन हुये।

मैं हरि बिन क्यूं ज्यूं री माई ।
पिव कारण बौरी भई, ज्यूं काठहि घुन खाई ।
ओखद मूल न संचरै, मोहिं लाग्यो बौराई ॥
कमठ दादुर बसत जल में, जलहि ते उपजाई ।
मीन जल के बिछुरे तन, तलफि कै मर जाई ॥
पिय ढूँढन बन-बन गई, कहूं मुरली धुनि पाई ।
'मीरा' के प्रभु लाल गिरधर, मिलि गये सुखदाई ॥

ऐसी लगन लगाय कहां तू जासी

मीरा जी अपने आप से कहती हैं कि ऐसी प्रेम की लगन लगा के तू कहाँ जाती है। हे गोपाल ! तुम्हें देखे बिना मुझे थोड़ा सा भी चैन नहीं मिलता है, हृदय में तड़प कर रह जाती हूँ। हे नाथ ! तुम्हारे लिए मैं जोगिन बन जाऊँगी और काशी में जाकर कुआँ के किनारे लेटकर करवट के बहाने कुँए में गिर पड़ूँगी। हे प्रभु गिरधर नागर ! यह मीरा तो तुम्हारे चरणकमलों की दासी है ।

ऐसी लगन लगाय कहां तू जासी ।
तुम देखे बिन कल न पड़त हैं तड़फ-तड़फ जीव जासी ॥
तेरे खातिर जोगण हूँगी करवट लूँगी कासी ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल की दासी ॥

म्हारे जनम मरण रा साथी

हे कृष्ण ! तुम मेरे जन्म-मृत्यु के समय साथ रहने वाले सच्चे साथी हो। दिन और रात कभी एक पल भी मैं तुम्हें नहीं भूल सकती। यह तो मेरा हृदय ही जानता है कि तुम्हें देखे बिना मुझे बिल्कुल चैन नहीं मिलता है। अपने महल की ऊँची छत पर चढ़कर मैं रास्ता देखती हूँ कि कब तुम आओगे। तुम्हारे विरह में रोते-रोते मेरी आँखें लाल हो गयी हैं। यह संसार पूरी तरह असत्य है। यहाँ के सभी पारिवारिक सम्बन्ध पूरी तरह मिथ्या हैं। दोनों हाथ जोड़कर मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरी बात सुन लो। यह मेरा मन पागल हाथी की भाँति अत्यन्त ही दुष्ट है। सद्गुरु ने मेरे सिर पर हाथ रख दिया है, उनके दिये ज्ञानरूपी अंकुश से मैं सदा इस मन को समझाती रहती हूँ। क्षण-क्षण में मैं पिया का रूप निहारा करती हूँ और उसका दर्शन करके ही मुझे आनन्द मिलता है। मीरा जी कहती हैं – हे प्रभु गिरधर नागर ! मेरा मन तो आपके चरणकमलों के चिंतन में लीन हो गया है।

म्हारे जनम मरण रा साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती ।
थाँ देख्यां बिन कल न पड़त है, जाणत मेरी छाती ।
ऊँची चढ़-चढ़ पंथ निहारुं, रोय-रोय अंखियां राती ॥
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती ।
दोउ कर जोड़यां अजर करुं छूं, सुण लीज्यो मेरी बाती ॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी ।
सतगुरु हाथ धर्‌यो सिर ऊपर, अँकुस दै समझाती ॥
पल पल पिव को रूप निहारुं, निरख-निरख सुखपाती ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित राती ॥

छिन-छिन में याद आवे रे

क्षण-क्षण में मुझे मोहन की बातें याद आती हैं। एक दिन मैं अपने महल में अपनी सखी के साथ बैठी थी, हाथ जोड़कर प्रार्थना करते-करते रात हो

छिन-छिन में याद आवे रे मोहन की बातड़ली ॥
एक दिन बैठी रंग भवन में, संग में लीनी साथड़ली ।
हाथ जोड़ने करुं विनती, पड़ गई रात रातड़ली ॥
एक दिन सोती रंग भवन में, सपनो आयो रातड़ली ।
आण अचानक दर्शन दीन्हो, खुल गई आंखड़ली ॥
जमुना किनारे धेनु चरावे, हाथ में लीनी लाकड़ली ।
राधा गोपी को तज दीनी, कुबजा साथड़ली ॥
चीर चोर कर चढ़े कदम पर, हाथ में लीनी गांठड़ली ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, बज रही बांसड़ली ॥

गयी। एक दिन मैं अपने घर में सो रही थी तो रात को स्वप्न में वह मोहन आया, अचानक आकर उसने मुझे दर्शन दिया, इतने में ही मेरी नींद खुल गयी। गोविन्द हाथ में लकुट लेकर यमुना तट पर गौएँ चराते हैं। राधारानी जैसी सर्वश्रेष्ठ गोपी का त्यागकर कृष्ण ने मथुरा में कुबड़ी कुब्जा का साथ पकड़ लिया। यमुना स्नान करते समय गोपियों के वस्त्रों की पोटली बाँधकर ये चीर-चोर कन्हैया कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये। मीरा जी कहती हैं – इन प्रभु गिरधर नागर की बाँसुरी अब भी बज रही है।

श्याम पिया मोरि रंग दै चुनरिया

श्याम पिया मोरि रंग दै चुनरिया ।
ऐसी रंग दे रंग नाहिं छूटे, धोबिया जो धोवे सारी उमरिया ।
जो न रंगोगे तो बैठी रहूंगी, बैठे बिता दूंगी सारी उमरिया ॥
लाल न रंगाऊँ हरी न रंगाऊँ, अपने ही रंग में रंग दे चुनरिया ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, स्याम पिया सो मेरी लागी नजरिया ॥

हे श्याम पिया ! कृपा करके मेरी चुनरी को रंग दो। इस चुनरी को ऐसे अद्भुत रंग में रंगो कि इसको साफ करने में धोबी की सारी उम्र बीत जाये फिर भी वह रंग न छूटे। यदि तुम नहीं रंगोगे तो मैं तुम्हारे द्वार पर बैठे-बैठे सारी उम्र बिता दूँगी। मैं इस चुनरी को किसी भौतिक लाल-हरे रंग में नहीं रंगाऊँगी, बल्कि अपने प्रेम के रंग में मेरी चुनरी को रंग दो (मेरा नख-शिख तुम्हारे प्रेम रंग से सराबोर हो जाये)। मीरा जी कहती हैं कि श्यामसुन्दर पिया से मेरी दृष्टि मिल गयी है।

साइयां रे तुम बिन नींद

हे स्वामी ! तुम्हारे बिना मुझे नींद नहीं आती है। एक-एक पल तुम्हारे बिना मुझे युग की भाँति प्रतीत होता है। क्षण-क्षण में तुम्हारे विरह की अग्नि मेरे हृदय को सदा जलाती रहती है। हे प्रियतम ! तुम्हारे बिना अँधेरा दूर नहीं होता है। घर में दीपक की ज्योति भी मुझे बिल्कुल नहीं सुहाती है। फूलों की सेज मुझे सूली की तरह चुभती है। सारी रात जागते हुए मैं बिताती हूँ। मैं अपनी पीड़ा किससे कहूँ, भला मेरी बात पर कौन विश्वास करेगा? प्रियतम के विरह रूपी सर्प ने मेरे हाथ को

डस लिया है, उसके जहर का ताप धीरे-धीरे मेरे हृदय पर प्रभाव डाल रहा है। वर्षा ऋतु आ गयी है। मेढक, मोर, पपीहा बोल रहे हैं और कोयल का मधुर शब्द सुनायी पड़ रहा है। उमड़-घुमड़ कर काले बादलों की छटा छा गयी है, बिजली की चमक मुझे भयभीत कर देती है। क्या इस जगत में कोई ऐसा प्रभु प्रेमी भक्त है जो मेरे हृदय की पीड़ा को दूर कर सके? मीरा जी कहती हैं कि अब तो केवल मुझे अपने अविनाशी श्रीहरि का दर्शन करना ही भला प्रतीत होता है।

साइयां रे तुम बिन नींद न आवै हो ।
पलक-पलक मोहिं जुग सों बीते, छिन-छिन विरह जरावै हो ॥
प्रीतम विन तिम जाइ न सजनी, दीपग भवन न भावै हो ।
फूलन सेज सूल होइ लागी, जागति रैण विहावै हो ॥
कासे कहूं कूण मानै मेरी, कह्यो को न पतियावै हो ।
प्रीतम पनंग डस्यो कर मेरो, लहरि लहरि जिय जावै हो ॥
दादुर मोर पपैया बोलै, कोइल सबद सुणावै हो ।
उमगि घटा घन ऊलरि आई, बिजू चमक डरावै हो ॥
है कोई जग में राम सनेही, जै उरिसाल मिटावै हो ।
'मीरा' के प्रभु हरि अविनासी, नैणा देख्यां भावे हो ॥

हरि तुम हरो जन की भीर

हे श्री हरि ! तुम अपने भक्तों की विपत्तियों का निवारण करो। (दुःशासन द्वारा द्रोपदी का अपमान किये जाने पर) तुमने अम्बरावतार द्वारा वस्त्र बढ़ाकर उसकी लज्जा का निर्वाह किया। अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए तुमने नृसिंह रूप धारण किया (जब तक हिरण्यकशिपु ने देवताओं और त्रिलोकी पर अत्याचार किया उसको भगवान् सहते रहे किन्तु भक्त प्रह्लाद को यातनाएं देने पर) प्रभु ने धैर्य का त्याग कर दिया और असुर हिरण्यकशिपु का तत्काल ही वध कर दिया। ग्राह द्वारा सरोवर में खींचे जाने पर जब गजराज डूबने लगा तब तुमने (ग्राह का सिर चक्र से काटकर) उसको जल से बाहर निकालकर रक्षा की। मीरा जी कहती हैं कि हे गिरिधर लाल! मैं तो तुम्हारी दासी हूँ और मैंने अपने शीश को सदा के लिए तुम्हारे चरणकमलों में समर्पित कर दिया है।

हरि तुम हरो जन की भीर ।
द्रोपदी की लाज राखी, तुरत बढ़ायो चीर ॥
भक्त कारन रूप नरहरि, धर्‌यो आप सरीर ।
हिरण्यकश्यप मारि लीन्हों, धर्‌यो नाहिंन धीर ॥
बूडतो गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर ।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर, चरण कमल पे सीर ॥

श्री बाबा महाराज के शब्दों में – "हम नृत्य को बढ़ावा देते हैं। नृत्य का चमत्कार मीराबाई ने दिखाया – "**नाचत घुँघरू बाँध कै, गावत लै करताल। देखत ही हरि सों मिली, तृन सम तजि संसार॥**" मीराबाई द्वारिकाधीश में लीन हो गई थी।

मीराबाई ब्रज छोड़कर द्वारिका क्यों गईं, लोग आक्षेप कर देते हैं, ठीक-ठीक कारण नहीं लिखते हैं।

कारण – "मीरा ने सोचा कि चित्तौड़ पर संकट है और लोग ये समझ रहे हैं कि मीरा के अपराध से संकट है, (चित्तौड़ के लोग) बार-बार यहाँ बुलाने आयेंगे और कृष्णधाम को छोड़कर के मैं जाऊँगी नहीं तो यहाँ (ब्रज में) ही दौड़-दौड़ के आयेंगे; इसलिए मीरा द्वारिका चली गयी।" चित्तौड़ वासियों के अनुभव में आ गया कि मीरा के अपराध के कारण ही राजस्थान में अकाल पड़ रहा है, संकट आ रहा है; लोगों ने अनुभव किया और कह-कह कर के बार-बार राणा जी को विश्वास दिला दिया कि 'हाँ' हमसे अपराध हुआ है। इसलिए मीरा को पुनः राजस्थान में लाने के लिए अच्छे-अच्छे बूढ़े ब्राह्मण जिनका मीरा बहुत सम्मान करती थी, उनको राणा जी ने भेजा कि तुम लोग मीरा को लेके आना। जिस समय मीरा को लेने के लिए ब्राह्मण चले, पता लगा कि मीरा वृन्दावन में नहीं है, द्वारिका में है तो सब ब्राह्मण लोग द्वारिका में पहुँच गये। ब्राह्मण – "मीरा ! हम तुमको लेके जायेंगे नहीं तो हम सब प्राण छोड़ देंगे।" मीरा चुप रही क्योंकि चित्तौड़ जाना नहीं चाहती थी, इसलिए नहीं कि उसको जहर पिलाया गया; ठाकुर जी को फेंक दिया था सरोवर में, जहाँ कृष्ण का अपमान हुआ है तो वहाँ क्या जायें? मीरा ने फिर ये कहा कि अच्छा मैं ठाकुर जी (द्वारिकाधीश) से आज्ञा ले आऊँ, आखिरी दर्शन कर लूँ। ब्राह्मण बोले – "ठीक है, जा।" मीरा मन्दिर में गयी, मन्दिर में जाने के बाद तीन पद गाये हैं मीरा ने, तीन पद गाने के बाद श्रीकृष्ण मूर्ति से आलिंगन किया और ठाकुर जी ने अपने में लीन कर लिया मीरा को। तीन पदों में पहला पद है – "**हरि तुम हरो जन की भीर**।" तुम्हारा नाम हरि है, तुम पीर (कष्ट) को हरण करने वाले हो। 'द्रौपदी की लाज राखी, तुरत बढ़ायो चीर॥' प्रायः आज के रसिक ऐसे पदों को सुनकर के चिढ़ते हैं कि महाभारत की घटना याद आ गयी, वृन्दावन की घटना तो है ही नहीं, इसलिए ऐसे पदों को नहीं गाते हैं; इसको संकीर्णता कहते हैं। प्रायः आजकल अपने को अनन्य कहलाने वाले लोग संकीर्ण बन गये हैं। 'भक्त कारन रूप नरहरि, धर्‍यो आप सरीर। हिरण्यकश्यपु मारि लीन्हो, धर्‍यो नाहिंन धीर॥' भगवान् ने हिरण्यकशिपु को तब नहीं मारा जब देवताओं को सताया, तीनों लोक पर अत्याचार किया लेकिन जब भक्त प्रह्लाद पर अत्याचार किया तब नहीं सह पाये, फिर तो मार ही दिया। "**जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥**" (रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - २१८) भक्त द्रोह करने वाले को भगवान् क्षमा नहीं करते हैं। दूसरा पद गाया है - "**सजन सुधि ज्यूं जाणि ज्यूं लीजै हो।**" ऐसा मिलो कि बिछुड़ना न हो। और आखिर में गाया – "**अब तो निभाया बनेगी बाँह गहे की लाज।**" इस पद में मीरा जी ने अपनी व्यथा वर्णन की है – हे मेरे सर्वसामर्थ्यवान् स्वामी ! अब मेरी लज्जा तो आप ही रखेंगे, अगर मैं नहीं जाती हूँ तो ये ब्राह्मण मर जायेंगे, अनशन पर बैठ गये हैं। लेकिन मैं अब जाऊँगी नहीं, राणा जी का मुँह नहीं देखूँगी, तो अब आप ही मेरे व्रत का

निर्वाह करो; ब्राह्मण भी न मरें और मेरा व्रत भी न टूटे। आज कोई नई बात नहीं है, हर युग में आपने भक्तों (प्रह्लाद, ध्रुव ...आदि) की लज्जा रखी है। "दीनी मोच्छ समाज" आज का रसिक चिढ़ता है कि 'मोक्ष' शब्द का प्रयोग किया मीरा ने। (इन पदों का अर्थ प्रायः लोग नहीं समझते हैं और अपने को रसिक मानने वाले लोग इन शब्दों को पकड़कर के वकीलवत् बहस करते हैं।) 'मोक्ष' माने मुक्ति नहीं है, यहाँ पर मोक्ष का अर्थ है – 'आपत्तियों से आपने सबको छुटकारा दिलाया।' आग में जलाया गया प्रह्लाद को, आपने रक्षा की। (ध्रुव को निकाल दिया गया जंगल में, सौतेली माँ ने कहा था कि जा तू शरीर छोड़ दे और फिर जन्म ले हमारे पेट से; उन सब संकटों से भगवान् ने छुटकारा दिलाया।) मीरा के सर्वसमर्पण युक्त भावोद्गारों को भावग्राही श्रीठाकुर जी ने सुनकर उसकी लज्जा को रख लिया। "**नाचत घुँघरू बाँध कै, गावत लै करताल। देखत ही हरि सों मिली, तृन सम तजि संसार॥**" "**मीरा को निज लीन्ह कियो, नागर नन्द किशोर। जग प्रतीति हित नाथ मुख, रह्यो चूनरी छोर॥**" भगवान् ने मीरा को लीन कर लिया और उनके मुँह में चूनरी लटक रही थी बाहर कि लोग समझ जाएँ कि हाँ, मीरा लीन हो गई है ठाकुर जी में। बहुत देर हो गयी, पुजारियों ने कहा कि मीरा किवाड़ नहीं खोल रही है, बाहर से किसी तरह से खोलकर के अन्दर देखा तो वहाँ मीरा नहीं, फिर और ध्यान से देखा तो ठाकुर जी के मुँह में चूनरी लटक रही थी, ओह! मीरा लीन हो गयी है।

मीराबाई ने द्वारिकाधीश जी के समक्ष तीन पद गाकर अपनी आत्मवेदना को कहा था –

१ – हरि तुम हरो जन की भीर

२ – सजन सुधि ज्यूं जाणि ज्यूं लीजै हो

३ – अब तो निभाया बनेगी, बाँह गहे की लाज

सजन सुधि ज्यूं जाणि

सजन सुधि ज्यूं जाणि ज्यूं लीजै हो।
तुम बिन मोरे और न कोई कृपा रावरी कीजै हो॥
दिन नहीं भूख रैण नहीं निदरा यूं तन पल पल छीजै हो।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर मिल बिछुड़न मत कीजै हो॥

हे साजन! जिस प्रकार से भी जानकर मेरी सुधि (खबर) लो। तुम्हारे बिना इस संसार में मेरा और कोई नहीं है, अतः मेरे ऊपर कृपा करो। दिन में मुझे भूख नहीं लगती और रात को नींद नहीं आती है, इस प्रकार मेरा शरीर पल-पल क्षीण (दुर्बल) होता जा रहा है। मीरा जी कहतीं हैं – हे मेरे स्वामी गिरधर नागर! मिलन के बाद मुझसे बिछुड़ा मत करो।

अब तो निभाया बनेगी

हे नाथ ! अब तो बाँह पकड़कर मेरी लाज का आपको निर्वाह करना होगा। मैं तो सर्वथा समर्थ आप जैसे स्वामी की शरण में हूँ, आप ही मेरी समस्त बिगड़ी को सुधारने वाले हैं, यह संसार रूपी भवसागर अत्यधिक भयानक तथा बलशाली है, इसको पार करने के लिए एकमात्र आप ही जहाज हैं। आप ही निराधार के आधार हो (जिसका कोई सहारा नहीं, उसके सहारा हो), संसार के गुरु हो। आपकी कृपा के बिना कोई कार्य सफल नहीं हो सकता । आपने असंख्य युगों में भक्तों के कष्टों का निवारण किया है और मुमुक्षु जनों को मोक्ष प्रदान किया। मीरा जी कहती हैं –हे महाराज ! मैं तो आपके चरण कमलों की शरण में हूँ, मेरे ऊपर सदा अपनी दया दृष्टि बनाये रखियेगा।

अब तो निभाया बनेगी बाँह गहे की लाज ।
समरथ सरण तुम्हारी साइयाँ, सर्व सुधारण काज ॥
भव सागर संसार अपर बल, जा में तुम हो जहाज ।
निरधारा आधार जगत गुरु, तुम बिन होय अकाज ॥
जुग-जुग भीर हरी भगतन की, दीनी मोच्छ समाज ।
'मीरा' शरण गही चरणन की, पैज रखो महाराज ॥

सूरदास जी

प्रीति करी काहू सुख न लह्यो

विरहिणी गोपिकायें कहती हैं – इस संसार में प्रेम करने पर आज तक किसी को सुख की प्राप्ति नहीं हुई। पतंगे ने दीपक से प्रेम किया और अन्त में अपनी देह को दीपक की ज्योति में भस्म कर दिया, अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। भँवरे ने प्रेम किया कमल से (संध्याकाल में कमल पर जा बैठा, सूर्यास्त होने पर कमल बन्द हो गया और भ्रमर उसी में कैद हो गया। कठोर काठ में भी छेद करने वाला भ्रमर कमल की कोमल पंखुड़ियों को काटकर अलग नहीं हुआ क्योंकि उसका कमल से प्रेम था)। रात को सरोवर पर मतवाले हाथी ने आकर उस कमल को खा लिया और इस प्रकार भ्रमर मारा गया। इसी प्रकार हिरन ने संगीत से प्रेम किया और बैन बजाने वाले के बाण से ही मारा गया। हम ब्रज की भोली-भाली गोपियों ने माधव से प्रगाढ़ प्रेम किया लेकिन मथुरा जाते समय उन्होंने हमसे कुछ नहीं कहा। सूरदास जी के शब्दों में गोपियाँ कहती हैं कि प्रभु श्यामसुन्दर के वियोग में हमारा दुःख दिन दूना बढ़ता जा रहा है और हमारे नेत्रों से सदा अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है।

प्रीति करी काहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपुन प्राण दह्यो ॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, करि मुख आप गह्यो ।
सारंग प्रीति करी जो नाद सों, सन्मुख बान सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो ।
'सूरदास' प्रभु बिनु दुख दूनो, नैनन नीर बह्यो ॥

नेह न होइ पुरानो रे अलि

श्री बाबा महाराज के शब्दों में - (प्रेम क्या है? ये गोपियाँ भौंरे के बहाने उद्धव से कह रही हैं।) गोपियाँ कहती हैं – “ऐ भौंरे, तू भन-भन करता हुआ उड़ता आया है, तुझे पता नहीं है प्रेम कभी पुराना नहीं होता (जैसे झरने में पानी नित्य नया आता है उसी तरह नित्य नवायमान रहता है, जो पुराना हो गया, सड़ गया, फट गया वो प्रेम नहीं था, एक काम का व्यापार था, स्वार्थ का एक बबूला था जो थोड़ी देर में फट गया। कुँआ, सरोवर, तालों में तो वही पानी रहता है लेकिन

नेह न होइ पुरानो रे अलि ।
जलप्रवाह ज्यों शोभासागर नित नवतन ब्रजनाथ इहाँ बलि ॥
जीवत है आनंदरूप रस बिन प्रतीति को मीन चढ़ो थलि ।
अमी अगाध सिंधु सर विहरत पीवतहू न अघात इतेजलि ॥
दिनदिन बढ़त नीर नलिनी ज्यों श्यामरंग में नैन रहे पलि ।
'सूर' गोपाल प्रीति जिय जाके छूटत नाहिंन नेह सती सलि ॥

झरने में नित्य नया जल प्रवाह झर-झर, झर-झर बहता है उसको प्रेम कहते हैं, जो उन तालाबों में पानी सड़ गया वो प्रेम नहीं है । जो पानी रुका हुआ है वो सड़ जाता है, नवीनता नहीं रहती है, संसार में यही प्रेम है। प्रेम तो एक झरना है इसमें नया-नया प्रेम रूपी पानी आ रहा है।), हे भौंरे ! तू हमारे कृष्ण विरह को समझ नहीं सकता (कृष्ण विरह में नित्य नवीनता है, नवीन आस्वाद है), श्रीकृष्ण में हमारा प्रेम जलप्रवाहवत् नित्य नवायमान है (नित्य झरने की तरह नया प्रेम है, हर गोपी के लिए कृष्ण नित्य नवीन हैं), ये प्रेम हमारा जीवन है, कृष्ण कहीं भी रहें। बिना पानी के मछली क्या जीवित रह सकती है? हम मछली की तरह प्रेम रूपी जल के बिना क्या जीवित रह सकती हैं, कहीं मछली जमीन पर देखी गई है? हम तो आज भी अमृत के समुद्र में घूम रही हैं, ये संसारी विरह नहीं है; इतना अगाध जल है कि हम पीती जा रही हैं विरह में और तृप्त नहीं हो रही हैं। जैसे कमलिनी रोज बढ़ती रहती है अच्छे पानी में, वैसे हमारे नेत्र विरह में बढ़ रहे हैं।" इसको प्रेम कहते हैं।

गोपियाँ भ्रमर से कहती हैं – अरे भँवरे! प्रेम कभी पुराना नहीं होता। जैसे झरने में नित्य नये जल का झर-झर प्रवाह होता रहता है जो अत्यन्त शोभाशाली होता है, उसी प्रकार हमारा प्रेम भी ब्रजनाथ के प्रति नित्य नवीन है। श्रीकृष्ण के प्रेम-माधुर्य रस का पान करके ही हम अब तक जीवित हैं। बिना जल के मछली क्या कभी थल पर जी सकती है? (इसी प्रकार हम कृष्ण प्रेम की मछलियाँ क्या प्रेम के बिना जी सकती हैं? भँवरे तू समझता है कि हम कृष्ण के विरह में दुःखी हैं)। अरे! हम तो प्रेमामृत सिन्धु के अथाह जल में विहार कर रही हैं, इतना अगाध प्रेम वारि है कि पीते हुए भी तृप्ति नहीं होती हैं। जैसे कमलिनी स्वच्छ जल में विकसित होती जाती है, उसी प्रकार श्याम रंग में हमारे नेत्र भी पल रहे हैं, पोषित हो रहे हैं। जिस प्रकार सती स्त्री के पातिव्रत धर्म का नियम कभी भंग नहीं होता, उसी प्रकार गोपाल के प्रति हमारा प्रेम भी कभी छूट नहीं सकता (वह तो प्रतिक्षण वर्धमान बना रहता है)।

हरि हौं सब पतितनि कौ राजा

हे श्री हरि! मैं समस्त पापियों का राजा हूँ। मैं अपने मुख से सदा परनिन्दा में निरत रहता हूँ। इस परनिन्दा के रूप में सदा मुझ राजा का युद्ध का वाद्ययंत्र बजता रहता है)। तृष्णा मेरा देश

(राज्य) है और सांसारिक मनोरथ मेरे वीर सैनिक हैं, इन्द्रियाँ मेरी तलवार हैं। दुष्ट बुद्धि देने के लिए काम मेरा मंत्री है तथा क्रोध मेरा द्वारपाल है। अहंकार रूपी हाथी पर सवार होकर मैंने दिग्विजय कर ली है। मेरे सिर पर लोभ का छत्र विराजमान है। असत् पुरुषों और अनात्म पदार्थों की संगति ही मेरी फौज है, ऐसा मैं शासक हूँ। मोह और माया बंदीजनों के समान मेरा गुण गाते हैं। असंख्य दोष मेरे यश गायक मागध (भाट) हैं। सूरदास जी कहते हैं कि मैंने मजबूत दरवाजे लगाकर अपने पाप के किले को सुदृढ़ बना लिया है।

हरि, हौं सब पतितनि कौ राजा ।
निंदा पर मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा ॥
तृष्ना देसऽरु सुभट मनोरथ, इंद्री खड्ग हमारी ।
मंत्री काम कुमति दीबे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी ॥
गज-अहँकार चढ़्यौ दिग-बिजयी, लोभ-छत्र करि सीस ।
फौज असत-संगति की मेरी, ऐसौ हौं मैं ईस ॥
मोह-माया बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार ।
'सूर' पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किवार ॥

हरि रस तब ही तो कछु पइहै

हरि रस की प्राप्ति तभी होगी जब किसी वस्तु की अप्राप्ति में शोक न हो और प्राप्ति में आनन्द न हो, ऐसा मार्ग ही ग्रहण करना चाहिए। मृदुभाषी होना चाहिए तथा सबके प्रति दैन्य भाव रखना चाहिए, ऐसे आचरण से ही शाश्वत आनन्द की प्राप्ति सम्भव है। बहस करना, हर्षित होना तथा आतुर होना ये सब चित्त के द्वन्द (दण्ड) हैं, इनको सहना (रोकना) चाहिए। अगर मन में इस प्रकार विशुद्ध भावना हो जाए तो उससे प्राप्त होने वाले आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। सूरदास जी कहते हैं - मेरे प्रभु की कृपा से (द्वन्द रहित, समता युक्त भाव होने पर) आठों सिद्धियाँ, नौ प्रकार की निधियाँ स्वयमेव ही प्राप्त हो जाएँगी।

हरि रस तब ही तो कछु पइहै ।
गऐं सोच आऐं नहिं आनँद, ऐसौ मारग गहियै ॥
कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहियै ।
बाद-बिबाद हर्ष-आतुरता, इतौ द्वंद जिय सहियै ॥
ऐसी जो आवै या मन में, तौ सुख कहँ लौं कहियै ।
अष्ट सिद्धि, नव निधि, 'सूरज' प्रभु, पहुँचै जो कछु चहियै ॥

सुने री मैंने निरबल के बल राम

मैंने ऐसा सुना है कि भगवान् तो केवल निर्बल के बल हैं। प्राचीन काल के संतों-भक्तों का जीवन साक्षी (गवाह) है कि भगवान् ने उनके बिगड़े हुए काम सँवार दिए। ग्राह द्वारा सरोवर में घसीटे जाने पर गजराज ने जब तक अपने बल का प्रयोग किया तब तक उसका कार्य बिल्कुल नहीं बन पाया और पूर्ण रूपेण निर्बल होने पर जब उसने भगवान् को पुकारा तो केवल आधा नाम लेने पर ही प्रभु उसकी रक्षा करने के लिए दौड़े चले आये। दुःशासन द्वारा साड़ी घसीटे जाने पर, सब तरफ से असहाय होकर जब द्रौपदी ने भगवान् को पुकारा तो अपने धाम (द्वारिका) से उसकी रक्षा करने के लिए गोविन्द प्रगट हो गये। दस हजार हाथियों का बल रखने वाले दुःशासन की भुजाएँ द्रौपदी की साड़ी खींचते-खींचते थक गयीं क्योंकि श्यामसुन्दर ने अम्बरावतार ग्रहण कर लिया था। इस संसार में चार प्रकार के बल हैं यथा अपना निज बल, साधन (भजन) बल, शारीरिक बल और धन बल। सूरदास जी कहते हैं कि ये सभी बल भी भगवान् की कृपा से ही प्राप्त होते हैं किन्तु जो इन चारों बलों का आश्रय छोड़ देता है, वह हरिनाम का आश्रय ग्रहण करता है और तब उसको भगवान् की पूर्ण कृपा की प्राप्ति होती है।

सुने री मैंने निरबल के बल राम ।
पिछली साख भरूँ संतन की, अड़े सँवारे काम ॥
जब लगि गज बल अपनो बरत्यो, नेक सर्‍यो नहिं काम ।
निरबल है बल राम पुकार्‍यो, आये आधे नाम ॥
द्रुपद सुता निरबल भइ ता दिन, तजि आये निज धाम ।
दुस्सासन की भुजा थकित भई, बसन रूप भये स्याम ॥
अप-बल, तप-बल और बाहु-बल, चौथो बल है दाम ।
'सूर' किसोर-कृपा तें सब बल, हारे को हरिनाम ॥

जब जब दीननि कठिन परी

यह मैं जानता हूँ कि जब कभी भी दीन भक्तों पर कोई कठिन आपदा आयी, तब–तब ही करुणासागर प्रभु ने उन भक्तों की

जब जब दीननि कठिन परी ।
जानत हौं, करुनामय जन कौं तब तब सुगम करी ॥
सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी ।
सुमिरत पट कौ कोट बढ़्यौ, तब दुख-सागर उबरी ॥
ब्रह्म बाण तैं गर्भ उबार्‍यौ, टेरत जरी जरी ।
बिपति-काल पांडव-बधु बन में, राखी स्याम ढरी ॥
करि भोजन अवसेस जज्ञ कौ, त्रिभुवन-भूख हरी ।
पाइ पियादे धाइ ग्राह सौं, लीन्हौ राखि करी ॥
तब तब रच्छा करी भगत पर, जब जब बिपति परी ।
महा मोह में पर्‍यौ 'सूर' प्रभु, काहैं सुधि बिसरी ॥

मुश्किल को आसान कर दिया अर्थात् उनकी समस्या को पूरी तरह हर लिया। भरी सभा के मध्य दुष्ट दुःशासन द्रौपदी को बल पूर्वक पकड़ लाया और साड़ी खींचने लगा तब गोविन्द का स्मरण करते ही प्रभु ने अम्बरावतार ग्रहण करके वस्त्रों का ढेर लगा दिया और इस प्रकार द्रौपदी को दुःख के अपार सागर से उबार लिया। जब अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया तो उत्तरा 'जली-जली' पुकारती हुई श्रीकृष्ण की ओर दौड़ी, उस समय प्रभु ने सूक्ष्म रूप से गर्भ में प्रवेश कर गर्भस्थ शिशु की रक्षा की। एक बार वनवास के समय दुर्वासा जी के आने पर पाण्डव संकट में पड़ गये थे, उस समय द्रौपदी द्वारा प्रभु का स्मरण करने पर उन्होंने (कृष्ण ने) वन में प्रकट होकर अतिथि यज्ञ से बचे हुए एक ही शाक के पत्ते को खाकर तीनों लोकों की क्षुधा हर ली और इस तरह पाण्डवों का संकट दूर किया। ग्राह द्वारा गजेन्द्र का पाँव पकड़े जाने पर पैदल (नंगे पाँव) ही भागकर प्रभु ने उसकी रक्षा की। इस तरह जब कभी भी भक्तों पर विपत्तियाँ आयीं, तब-तब ही दीनानाथ ने अपने भक्तों की रक्षा की। सूरदास जी कहते हैं - हे स्वामी! मैं आपका दास महामोह से ग्रसित हो गया हूँ, फिर आप मेरी सुधि लेना कैसे भूल गये?

गोविन्द सौ पति पाइ, कहँ मन अनत लगावै

गोविन्द सौ पति पाइ, कहँ मन अनत लगावै ।
स्याम-भजन बिनु सुख नहीं, जौ दस दिसि धावै ॥
पति कौ ब्रत जो धरै तिय, सो सोभा पावै ।
आन पुरुष कौ नाम ले, पतिव्रतहि लजावै ॥
गनिका उपज्यौ पूत, सो कौन कौ कहावै ।
बसत सुरसरी तीर मंदमति कूप खनावै ॥
जैसैं स्वान कुलाल के, पाछैं लगि धावै ।
आन देव हरि तजि भजै, सो जनम गँवावै ॥
फल की आसा चित्त धरि, जो बृच्छ बढ़ावै ।
महा मूढ़ सो मूल तजि, साखा जल नावै ॥
सहज भज नंदलाल कौं, सो सब सचु पावै ।
'सूरदास' हरि नाम लै, दुख निकट न आवै ॥

हे मनुष्य ! गोविन्द जैसे श्रेष्ठ स्वामी को पाकर तू अपने मन को अन्यत्र कहाँ लगाता है? सुख की प्राप्ति के लिए चाहे कोई दसों दिशाओं में दौड़ आये लेकिन श्यामसुन्दर के भजन बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो स्त्री पतिव्रत-धर्म का पालन करती है, जगत में उसी की शोभा (महिमा) चारों ओर फैलती है, जबकि अन्य पुरुष का नाम लेने वाली (पर पुरुष से प्रेम करने वाली) स्त्री पतिव्रत-धर्म को लज्जित करती है।

वेश्या से उपजा पुत्र किसका कहा जायेगा – किसी का नहीं। माया वेश्या है, उसका आश्रय करेगा जीव तो किसी का पुत्र नहीं रहेगा। क्योंकि वास्तव में यह जीव भगवान् का पुत्र हैं। गंगा की धारा तो है गोविन्द का भजन, उसे छोड़ कर यह मंदमति जीव अन्य साधनों का आश्रय लेता है, जिस प्रकार कोई गंगा किनारे रह कर भी जल पीने

के लिए कुँआ खुदवाये। कुम्हार का कुत्ता, कुम्हार के पीछे व्यर्थ ही दौड़ता रहता है। (कुम्हार मिट्टी खोदता है, भट्टी पर जाता है तो कुत्ता भी पीछे-पीछे चला जाता हैं, इस प्रकार व्यर्थ ही कुम्हार के पीछे लगे रहने से उसे कुछ नहीं प्राप्त होता है।) उसी प्रकार जो मनुष्य श्री हरि को त्याग कर अन्य देवताओं की आराधना करते हैं वे अपना मनुष्य जन्म व्यर्थ ही नष्ट करते हैं। चित्त में फल प्राप्ति की आशा लेकर जो वृक्षारोपण करता है (उसे बढ़ाता है) लेकिन यदि वह वृक्ष की जड़ में पानी न देकर, शाखाओं पर पानी डाले तो महामूर्ख ही माना जायेगा। जो सहज भाव से नन्दलाल का भजन करता है, उसे सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो जाती है। सूरदास जी कहते हैं – हे जीव! श्री हरि का नाम लो, जिससे दुःख कभी भी पास नहीं आ सकता।

पढ़ौ भाइ राम मुकुंद मुरारि

प्रह्लाद जी असुर बालकों से कहते हैं – हे भाई! राम, मुकुन्द, मुरारि आदि भगवन्नामों की पढ़ाई करो (इनका संकीर्तन करो)। मन को भगवान् के चरण-कमलों के सम्मुख रखो (निरन्तर भगवद् स्मरण करो)। इससे कहीं भी असफलता नहीं होगी। प्रह्लाद जी कहते हैं – "हे दैत्य-बालकों! सुनो, (भगवन्नाम् संकीर्तन करके) अपने जन्म को सुधार लो। अपने बल को मानने वाले अभिमानी हिरण्यकशिपु की क्या शक्ति है? (कोई शक्ति नहीं है) जो संकीर्तन करने वाले तुम लोगों को मार सके। किसी जड़ बुद्धि (नास्तिक बुद्धि) वाले से डरो नहीं, सदा एकरस रहने वाली (अनन्य, अनपायनी) भक्ति करो जो केवल भगवद्प्रेम देने वाली सार रूपा है। रक्षा करने (योगक्षेम धारण करने) वाले कोई और हैं अर्थात् श्री कृष्ण हैं, वे चार भुजा धारण करने वाले सत्यस्वरूप श्री नारायण देव ही हैं।"

पढौ भाइ, राम-मुकुंद-मुरारि ।
चरन-कमल मन सनसुख राखौ, कहूँ न आवै हारि ॥
कहै प्रहलाद, सुनौ रे बालक, लीजै जनम सुधारि ।
को है हिरनकसिप अभिमानी, तुम्हैं सकै जो मारि ॥
जनि डरपौ जड़मति काहू सौं, भक्ति करौ इकसारि ।
राखनहार अहै कोउ औरे, स्याम धरै भुज चारि ॥
सत्यस्वरुप देव नारायन, देखौ हृदय बिचारि ।
'सूरदास' प्रभु सब मैं व्यापक, ज्यौं धरनी मैं बारि ॥

सूरदास जी कहते हैं कि वे भगवान् सभी (जड़-चेतन) में वैसे ही व्याप्त (विद्यमान) हैं जैसे पृथ्वी में जल तत्त्व है। (उन व्यापक प्रभु को रक्षा करने हेतु कहीं से आना नहीं पड़ता, वहीं प्रकट हो जाते हैं।)

चरण-कमल बंदौ हरि-राइ

सूरदास जी कहते हैं कि मैं जगदीश्वर श्री हरि के चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से लंगड़ा व्यक्ति भी ऊँचे पर्वत की चढ़ाई को सहज ही पार कर लेता है। नेत्रहीन को उनकी कृपा से सब कुछ देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, बहरा सुनने लगता है, गूंगा बोलने लगता है और अत्यंत दरिद्र (कंगाल) भी चक्रवर्ती सम्राट बनकर सिर पर छत्र धारण करने वाला बन जाता है। मैं ऐसे परम करुणामय स्वामी के चरणकमलों की बारम्बार वन्दना करता हूँ॥

चरण-कमल बंदौ हरि-राइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाइ ॥
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ ॥

प्रभु मैं पीछौं लियौ तुम्हारौ

हे प्रभु ! मैंने आपका आश्रय अच्छी तरह पकड़ लिया है। आप दीनों पर दया करने वाले हैं, इसलिए आपका नाम है दीनदयाल, अतः आप मुझ दीन की सारी विपत्तियों को समाप्त कर दीजिए। मैं अत्यधिक दुष्ट बुद्धि वाला, कुटिल, अपराधी हूँ, मैंने अपने हृदय में अवगुणों का भण्डार भर लिया है। अब इस क्रूर सूरदास की आपसे यही विनम्र प्रार्थना है कि कृपा करके मुझे अपने चरणों की छत्रछाया में रख लीजिए।

प्रभु, मैं पीछौं लियौ तुम्हारौ ।
तुम तौ दीनदयाल कहावत, सकल आपदा टारौ ॥
महा कुबुद्धि, कुटिल, अपराधी, औगुन भरि लियौ भारौ ।
'सूर' कूर की याही बिनती, लै चरननि मैं डारौ ॥

मेरी सुधि लीजौ हे ब्रजराज

हे ब्रजराज ! कृपा करके मेरी सुधि लीजिए क्योंकि इस संसार में आपके सिवा मेरा और कोई नहीं है। आप ही मेरी बिगड़ी को सुधारने वाले (मेरी बिगड़ी बनाने

मेरी सुधि लीजौ हे, ब्रजराज ।
और नहीं जग में कोउ मेरौ, तुमहिं सुधारन काज ॥
गनिका, गीध, अजामिल तारे, सबरी और गजराज ।
'सूर' पतित पावन करि लीजै, बाँह गहे की लाज ॥

वाले) हैं। आपने महाअधम प्राणियों जैसे गणिका (वैश्या), माँसभोजी गीध (जटायु), क्रूरकर्मा और वेश्यागामी अजामिल, अधम योनि के गजराज और भीलनी शबरी का भी उद्धार किया। अब मेरी बारी है, आप पतित पावन हैं अतः मुझ पतित सूरदास को भी पवित्र कीजिये। मेरी बाँह पकड़ लीजिये अर्थात् मुझ पामर को पावन बनाकर अपने पतितपावन नाम की लाज रख लीजिए।

रे मन गोबिंद के ह्वै रहियै

रे मन, गोबिंद के ह्वै रहियै ।
इहिं संसार अपार बिरत ह्वै, जम की त्रास न सहियै ॥
दुख-सुख कीरति भाग आपनैं, आइ परै सो गहियै ।
'सूरदास' भगवंत-भजन करि, अंत बार कछु लहियै ॥

अरे मेरे मन, इस असार जगत में एकमात्र गोविन्द के ही होकर रहो। इस अत्यंत भयंकर संसार की आसक्ति से शीघ्र ही विरक्त हो जाओ, जिससे कि मृत्यु के पश्चात् नरक में दारुण यम यातना न सहनी पड़े। प्रारब्ध वश जो भी सुख-दुःख, यश-अपयश तुम्हारे सामने आता है उसे निर्विकार चित्त से ग्रहण करो। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् के भजन का संग्रह करो, जो अन्त समय तुम्हारे काम आये (तुम्हें भव सागर के पार कर सके)।

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ॥
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा सब्द रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल ।
'सूरदास' की सबै अबिद्या, दूरि करौ नंदलाल ॥

हे गोपाल ! चौरासी लाख योनियों में मैं बहुत नाच चुका हूँ। (जैसे नृत्य करने वाला श्रृंगार करता है वैसे ही) काम, क्रोध का तो मैंने चोला पहन रखा है, मेरे गले में अनादिकाल से विषय आसक्ति की माला पड़ी हुई है। मैंने अपने पैरों में महामोह के घुँघरू बाँध रखे हैं, जिनसे सदा परनिन्दा की रसमयी ध्वनि निकलती है (महामोह से ग्रसित होने के कारण मुझे सदा परनिन्दा करने और सुनने में ही आनन्द आता है)। भ्रम (अविद्या) ग्रसित मेरा मन पखावज (मृदंग) के रूप में सदा मुझे गलत रास्ते पर ही चलाता रहता है। मेरे अन्तःकरण में हे गोपाल ! मन अनादिकाल से तृष्णा की आवाज दे रहा है

(भोग भोगो, शरीरों से रमण करो, जड़ माया का संग्रह करो, बस इसी की प्यास जगाता है)। मैंने अपनी कमर में माया का फेंटा बाँध लिया है (अनादिकाल से यह माया की फेंट बँधी है, कभी खुली नहीं, अनन्त बार जन्मे-मरे, कभी यह फेंट खुली नहीं)। मैंने अपने मस्तक पर लोभ का तिलक लगा रखा है (जिससे लोग मुझे बड़ा भारी भक्त समझकर सम्मान करें और दान दें, इसीलिये यह तिलक भोग और ऐश्वर्य की कामना का है)। (नाचने वाला अनेकों मंचों पर नाचता है वैसे ही) मैं भी अनादिकाल से आकाश में पक्षी आदि बनकर, जल में मछली आदि बनकर और स्थल पर जड़-चेतन आदि योनियों में नाचता रहा। सूरदास जी कहते हैं कि हे नंदलाल ! अनादिकाल से इस प्रकार से मैं अविद्या (माया) का नाच नाचता रहा और आगे भी नाचता रहूँगा – इस भयानक माया के नाच को केवल आप ही बन्द कर सकते हैं और कोई उपाय नहीं है।

अचंभौ इन लोगनि को आवै

अचंभौ इन लोगनि को आवै ।
छाँड़ै स्याम-नाम-अम्रित-फल, माया-विष-फल भावै ॥
निंदित मूढ़ मलय चंदन कौं, राख अंग लपटावै ।
मानसरोवर छाँड़ि हंस तट, काग सरोवर न्हावै ॥
पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै ।
चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि, भ्रमि-भ्रमि जमहि हँसावै ॥
मृगतृष्ना आचार, जगत जल, ता संग मन ललचावै ।
चहत जु 'सूरदास' संतनि मिलि हरि जस काहे न गावै ॥

ऐसे लोगों को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है जो कृष्ण नाम रूपी अमृत फल को छोड़कर माया का विषैला फल पसंद करते हैं। ये मूढ़ मलय गिरि के चन्दन की तो निन्दा किया करते हैं और स्वयं अपने शरीर में राख लगाते हैं। हंस समुदाय से सुशोभित तट वाले सुन्दर मान सरोवर को तो छोड़ देते हैं और कौओं के सेवन योग्य दूषित सरोवर में स्नान करते हैं (महापुरुषों के सत्संग में जहाँ भगवान् की कथा – कीर्तन का अमृत बहता है उसे छोड़ देते हैं और अपने जैसे विषयी पामरों के कुसंग में निन्दित विषय चर्चा, निन्दित विषय-भोग में रमण करते हैं)। इनके स्वयं के घर में आग लग चुकी है और जलते – जलते वह आग इनके पैरों तले पहुँच चुकी है लेकिन ये इतने मूर्ख हैं कि उस आग को बुझाना छोड़कर बाहर पड़े किसी कूड़े के ढेर में लगी आग को बुझाने दौड़ पड़ते हैं। (देह-गेह में आसक्त हुए मनुष्यों की आयु को यमदूत और सूर्यदेव प्रतिक्षण नष्ट कर रहे हैं, इस बात का इन्हें पता नहीं है, काल अलग से इनके सिर पर सवार है लेकिन मोहवश ये मूर्ख प्राणी भगवान् का भजन और संतों का संग करके अपनी सुरक्षा का कोई उपाय न कर नाशवान धन और भौतिक पदार्थों की सुरक्षा में ही दिन-रात लगे रहते हैं।) चौरासी लाख योनियों में और यमराज के द्वार पर बार-बार पहुँचने से इनकी निर्लज्जता को देखकर यमदूत भी हँसते हैं। संसारी सुख मृगतृष्णा के जल के समान सर्वथा असत्य है लेकिन जीव का मन सदा उन्हीं के लिए लालायित रहता है।

सूरदास जी कहते हैं कि यदि मनुष्य अविनाशी सुख और अपना कल्याण चाहता है तो संतों के समाज में बैठकर श्री हरि के यश को क्यों नहीं गाता है?

अब वे विपदा हू न रहीं

सूरदास जी अपने पिछले जीवन की घटनाओं को याद करके कहते हैं कि अब मेरे जीवन से वे विपत्तियाँ दूर हो गयी हैं। वे दिन कितने अच्छे थे जब मैं मन से प्रभु का स्मण करता था तभी वे मुझे मिल जाया करते थे। वे दीनबन्धु मुझ दीन दास के हित के लिए, मेरी सुरक्षा के लिए हर समय मेरे साथ ही लगे डोलते थे। जैसे आँख पर कोई खतरा आते ही पलकें बन्द होकर नेत्र पुतली की रक्षा करती हैं वैसे ही वो करुणामय हर समय संकट से मेरी रक्षा करते थे। चाहे घनघोर जंगल हो या रणभूमि में युद्ध हो रहा हो, अन्धा होने के कारण जब कभी भी मैं किसी खतरे से घिर जाता तो प्रभु वहीं उपस्थित होकर समस्त आपदाओं से मेरी रक्षा करते थे। कृपा सिन्धु प्रभु की करुणा-कथा की चर्चा कहाँ तक करूँ? वह तो अवर्णनीय है। सूरदास जी कहते हैं कि ऐसी सुख-संपत्ति किस काम की जिसमें यदुनाथ श्रीकृष्ण की स्मृति एवं सानिध्य नहीं है।

अब वे विपदा हू न रहीं ।
मनसा करि सुमिरत है जब-जब, मिलते तब तबही ॥
अपने दीन दास के हित लगि, फिरते संग-संग हीं ।
लेते राखि पलक गोलक ज्यौं, संतत तिन सबहीं ॥
रन अरु बन, बिग्रह, डर आगैं, आवत जहीं-तहीं ।
राखि लियौ तुमहीं जग-जीवन, त्रासनि तैं सबहीं ॥
कृपा-सिंधु की कथा एकरस, क्यौं करि जाति कहीं ।
कीजे कहा 'सूर' सुख-संपति, जहँ जदुनाथ नहीं ॥

आछौ गात अकारथ गार्‌यो

हे जीव ! (भगवान् के भजन के अनुकूल) उत्तम मनुष्य शरीर को तूने व्यर्थ ही गँवा दिया। कमल नयन गोविन्द से प्रेम न करके (संसारी विषयों से प्रेम करके) तू इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को जुआ के समान हार गया। दिन-रात मिथ्या विषय भोगों में रमण करने के कारण तेरी चारों आँखें फूट गयीं (दो बाहरी और दो ज्ञान

आछौ गात अकारथ गार्‌यो ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौं हार्‌यो ॥
निसि-दिन विषय-बिलासनि-बिलसत, फूटि गई तव चार्‌यो ।
अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन दई कौ मार्‌यो ॥
कामी, कृपन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तार्‌यो ।
तातैं कहत दयाल देव-मनि, काहैं सूर बिसार्‌यो ॥

रूपी भीतरी नेत्र) (नाशवान विषय सुख जब समाप्त हो गया, युवावस्था भी बीत गयी और वृद्धावस्था आ गयी) तो अब सिवाय पछताने के कुछ नहीं रह गया, केवल दुःख ही दुःख रह गया जीवन में, दैव के द्वारा ठुकराया हुआ दीन अवस्था को प्राप्त हो गया। किन्तु हे दीनवत्सल प्रभो ! आपने बड़े-बड़े कामियों, कृपण, कुचाली, देखने के अयोग्य सर्वथा महापापी जीवों को भी अपनी कृपापूर्ण दृष्टि से तार दिया, अतः हे दीनदयाल, देव शिरोमणि ! मैं आपसे विनती करता हूँ कि आपने मुझ दीन सूरदास को अपनी कृपा दृष्टि से क्यों वंचित कर दिया, मेरा उद्धार अब तक क्यों न किया?

इत-उत देखत जनम गयौ

हे मनुष्य ! तेरा सारा जीवन इधर-उधर के विषयों को देखने में ही बीत गया। संसार में चारों ओर फैली हुई झूठी माया की आसक्ति में पड़ने के कारण तू भीतरी ज्ञान रूपी नेत्रों से तो अन्धा हुआ ही, बाहरी नेत्रों की शक्ति भी रूपासक्ति के कारण नष्ट हो गयी। तेरे जन्म के समय तेरी माँ को दारुण प्रसव पीड़ा सहन करनी पड़ी, उस समय प्राण जाने के समान अत्यन्त असह्य दुःख माता को और तुझे दोनों को ही भोगना पड़ा। (गर्भवास के समय तूने भगवान् से बाह्य जगत में आने पर भजनमय जीवन बिताने की प्रतिज्ञा की थी) गर्भ से बाहर आने पर तूने उन त्रिलोकीनाथ प्रभु को भुला दिया, गर्भवास की प्रतिज्ञा के अनुसार क्यों न सदा उनका भजन करता रहा? अपने जीवन में तूने कभी भी संत-सभा में श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण नहीं किया, मिथ्या विषयों की आसक्ति में फँसकर संसार में यूँ ही कष्ट पाता रहा। सूरदास जी कहते हैं कि अनादिकाल से संसार के सारे जीव भवसागर में डूबे हुए हैं, कोई इससे पार नहीं हुआ, केवल भगवान् के भक्त ही हर युग में माया के बंधन से स्वयं मुक्त होते हैं और दूसरे प्राणियों का भी उद्धार करते हैं।

इत-उत देखत जनम गयौ ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुं दृग अंध भयौ ॥
जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भइ, अति दुख प्रान सह्यौ ।
वै त्रिभुवनपति बिसरि गए तोहि, सुमिरत क्यौं न रह्यौ ॥
श्रीभागवत सुन्यौ नहिं कबहूं, बीचहिं भटकि मर्‌यौ ।
'सूरदास' कहै, सब जग बूडयौ, जुग-जुग भक्त तर्‌यौ ॥

इहिं बिधि कहा घटैगो तेरौ

हे प्राणी ! इस प्रकार की रहनी के द्वारा जीवन बिताने से तेरा क्या घटेगा? स्वयं घर का मालिक मत बन अपितु श्री नंदलाल जी को घर का स्वामी बना और स्वयं तो उनका दास बनकर रह। घर में बहुत संपत्ति बढ़ गयी तो उससे क्या लाभ है? अथवा तूने बहुत बड़ा भव्य मकान बना

लिया तो भी उससे क्या लाभ होने वाला है? (कुछ नहीं)। असली घर तो वह है जहाँ भगवान् की कथा होती हो, श्री ठाकुर जी की सेवा-पूजा होती हो और संतों का समागम और उनकी सेवा होती हो।

इहिं बिधि कहा घटैगो तेरौ ।
नंदनन्दन करि घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ ॥
कहा भयौ जौ संपति बाढ़ी, कियौ बहुत घर घेरौ ।
कहुँ हरि-कथा, कहूँ हरि पूजा कहुँ संतनि कौ डेरौ ॥
जो बनिता-सुत-जूथ सकेले, हय-गय-बिभव घनेरौ ।
सबै समर्पौ 'सूर-स्याम' कौं, यह साँचौ मत मेरौ ॥

यदि घर में सद्गुणवती स्त्री और अनुकूल पुत्रादि का समुदाय है तथा हाथी-घोड़ों से सम्पन्न अपार वैभव है तो सूरदास जी कहते हैं कि इन सबको भगवान् श्यामसुन्दर की सेवा में समर्पित कर देना चाहिए – मेरा तो यही सच्चा मत है।

करी गोपाल की सब होइ

सब कुछ गोपाल जी ही करते हैं। कोई मनुष्य यदि ऐसा मानता है कि मेरे पुरुषार्थ से यह कार्य हुआ, यह मैंने किया तो वह मिथ्यावादी है। अपने साधन, मन्त्र-जन्त्र, निजी प्रयास, बल इन सबका आश्रय मत लो, इनका अहम् मत करो। तुम्हारे

करी गोपाल की सब होइ ।
जो अपनौं पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ ॥
साधन, मंत्र, जंत्र उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ ।
जो कुछ लिखि राखी नंदनन्दन, मेटि सकै नहिं कोइ ॥
दुख-सुख, लाभ अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, स्याम चरण मन पोइ ॥

भाग्य में जो कुछ नन्दनन्दन ने लिख दिया है, उसे मिटाने वाला संसार में कोई नहीं है। दुःख-सुख, लाभ-हानि की प्राप्ति में विषमता का भाव लाकर क्यों परेशान होकर रोते हो? सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् परम करुणामय हैं (वे जो कुछ करते हैं जीवों के कल्याण के लिए ही करते हैं) अतः प्रसन्न चित्त होकर सदा उनके चरणों का ही चिन्तन करो, उन्हीं के चरणाश्रय में रहो।

काया हरि कैं काम न आई

यह मनुष्य शरीर श्री हरि की सेवा के काम नहीं आया। प्रमादी मनुष्य, जहाँ संत समाज में हरियश का गायन होता है और भाव-भक्ति की वर्षा होती है, वहाँ जाने में आलस्य करता है किन्तु सांसारिक कामनाओं के सम्बन्ध में मनोरथ (चिन्तन) करता हुआ जहाँ उनकी प्राप्ति का प्रसंग सुनता है तो लोभ से विवश होकर तुरन्त दौड़ जाता है। जहाँ दिव्य सौन्दर्यमय रसस्वरूप भगवान्

की आराधना होती है, वहाँ जाकर उनके चरणकमलों में सिर क्यों नहीं झुकाता है? जब तक हृदय में भावना के द्वारा श्यामसुन्दर के श्री अंग का स्पर्श नहीं करेगा, उन्हें

काया हरि कैं काम न आई ।
भाव-भक्ति जहँ हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई ॥
लोभातुर है काम मनोरथ, तहाँ सुनत उठि धाई ।
चरन-कमल सुंदर जहँ हरि के, क्योंहुँ न जात नवाई ॥
जब लगि स्याम-अंग नहिं परसत, अंधे ज्यौं भरमाई ।
'सूरदास' भगवंत-भजन तजि, विषय परम विष खाई ॥

हृदय में धारण नहीं करेगा तब तक अंधे की तरह संसार के मिथ्या विषयों की प्राप्ति के लिये ही भटकता रहेगा। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् के भजन रूपी अमृत को छोड़कर मोहान्ध मनुष्य विषय रूपी भयंकर विष का ही सदा सेवन करता रहता है।

को को न तर्यो हरि-नाम लिऐं

ऐसा कौन है, श्री हरि का नाम लेने से जिसका उद्धार नहीं हुआ? अत्यंत पापिनी गणिका (वैश्या) तोते को राम नाम पढ़ाने से तर गयी, बहेलिये ने भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में बाण मारा और वह सदेह भगवान् के धाम पहुँच गया। व्यास देव जी ने वेदों का विभाजन किया, महाभारत की रचना की, सत्रह पुराणों की रचना की लेकिन उनके हृदय

को को न तर्यो हरि-नाम लिऐं ।
सुवा पढ़ावत गनिका तारी, ब्याध तर्यो सर-घात किऐं ॥
अंतर-दाह जु मिट्यौ ब्यास कौ, इक चित है भागवत किऐं ।
प्रभु तैं जन, जन तैं प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हिऐं ॥
जौ पैं कृष्ण भक्ति नहिं जानी, कहा सुमेरु-सम दान दिऐं ।
'सूरदास' बिमुख जो हरि तैं, कहा भयौ जुग कोटि जिऐं ॥

की जलन, उनका ताप दूर हुआ श्रीहरि के कथामृत से भरपूर श्रीमद्भागवत की रचना करने से। जिस भक्त के हृदय में भगवान् के प्रति जैसी भावना, जैसी प्रीति होती है, उसी के अनुसार प्रभु उससे प्रेम व्यवहार करते हैं। यदि तुमने भगवान् की भक्ति का महत्व नहीं समझा तो सुमेरु पर्वत के समान विशाल दान करने से तुम्हें क्या मिलेगा? सूरदास जी कहते हैं कि जो अभागे मनुष्य भगवान् से विमुख हैं, यदि वे करोड़ों युगों तक जियें तो भी उससे कोई लाभ नहीं है।

कौन सुने यह बात हमारी

हे नाथ ! (आपके अलावा) मेरी इस प्रार्थना को कौन सुनेगा? हे बनवारी ! आपके बिना कोई ऐसा नहीं दिखाई पड़ता जो मेरे संकट को दूर करने में समर्थ हो, अतः आपको छोड़कर मैं किसको

अपनी व्यथा सुनाऊँ। हे निकुंज बिहारी ! आप सर्वज्ञ हैं, अनाथों के स्वामी हैं और दीनों पर अकारण दया करने वाले हैं। आपने सदा ही अपने दासों (भक्तों) की सहायता की है, जिस किसी ने आपको हृदय में धारण किया (मन से स्मरण किया) आपने उसका पालन किया, उसकी रक्षा की। हे यादवपति ! अब आपको छोड़कर भला मैं किसकी शरण में जाऊँ? आपकी बलिहारी है, मुझे अपनी शरण में रखकर मेरी समस्त विपत्तियों को हर लीजिए। आप शरणागतों का कष्ट दूर करने वाले हैं। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आपके चरणों की बार-बार बलिहारी है, मुझसे ऐसा क्या अपराध हो गया जिसके कारण आपने मुझे अपनी कृपा से वंचित कर दिया।

कौन सुने यह बात हमारी ।
समरथ और न देखौं तुम बिनु, कासौं बिथा कहौं बनवारी ॥
तुम अबिगत अनाथ के स्वामी, दीन-दयाल, निकुंज-बिहारी ।
सदा सहाइ करी दासनि की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी ॥
अब किहि सरन जाउँ जादौपति, राखि लेहु बलि त्रास निवारी ।
'सूरदास' चरननि की बलि-बलि, कौन खता तैं कृपा बिसारी ॥

क्यौं तू गोबिंद नाम बिसारौ

हे मन ! तूने श्री गोविन्द का नाम लेना क्यों छोड़ दिया है? अब भी सावधान हो जा और श्री हरि का भजन कर क्योंकि तेरे सिर के ऊपर भयंकर काल मंडरा रहा है। धन, पुत्र और स्त्री तेरे किसी काम नहीं आयेंगे जिनके लिए तू अपने-आप को ही भुला बैठा है (अर्थात् देह-गेह की आसक्ति में पड़कर तुझे यह भी होश नहीं है कि मेरा कल्याण कैसे होगा?) सूरदास जी कहते हैं कि यदि भगवान् का भजन नहीं करेगा तो अंतकाल में तुझे पछताना पड़ेगा और आँखों से आँसू बहाते, दुःख के साथ इस संसार से जाना पड़ेगा।

क्यौं तू गोबिंद नाम बिसारौ ।
अजहूं चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ ॥
धन-सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ ।
'सूरदास' भगवंत-भजन बिनु, चल्यो पछिताइ, नयन जल ढारौ ॥

जाको हरि अंगीकार कियौ

जिनको श्री हरि ने स्वीकार कर लिया (अपनी शरण में ले लिया) उनकी करोड़ों विघ्न बाधाओं को दूर करके प्रभु ने उन्हें अभय दान दिया और प्रतापी बना दिया। दुर्वासा जी ने अकारण ही भक्त

अम्बरीष पर क्रोध करके, उनके वध के लिए भयंकर (राक्षसी) कृत्या उत्पन्न की, इस प्रकार उन्हें सताया तब अम्बरीष जी ने श्री हरि की शरण ग्रहण की। अपनी भक्त वत्सलता की प्रतिज्ञा का पालन करते हुए मनमोहन श्री कृष्ण ने अम्बरीष जी की रक्षा की और दुर्वासा जी के पीछे सुदर्शन चक्र को लगा दिया। सुदर्शन चक्र की भीषण ज्वाला से त्रासित होकर जब दुर्वासा भगवान् की शरण में गये तो भी प्रभु ने उनकी रक्षा न कर वापस अम्बरीष जी के पास भेज दिया।

जाको हरि अंगीकार कियौ ।
ताके कोटि बिघन हरि हरि कै, अभै प्रताप दियौ ॥
दुरबासा अंबरीष सतायौ, सो हरि-सरन गयौ ।
परतिज्ञा राखि मनमोहन, फिरि तापैं पठयौ ॥
बहुत सासना दई प्रहलादहि, ताहि निसंक कियौ ।
निकसि खंभ तैं नाथ निरंतर, निज जन राखि लियौ ॥
मृतक भए सब सखा जिवाए, विष-जल जाइ पियौ ।
'सूरदास' प्रभु भक्तबछल हैं, उपमा कौं न बियौ ॥

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद जी को भीषण यातनाएं दीं लेकिन भगवान् ने हर प्रकार से उनकी रक्षा करके उनको निर्भय बना दिया। प्रह्लाद जी की वाणी को सत्य करने के लिए भगवान् नृसिंह रूप से प्रकट हो गये और हिरण्यकशिपु का वध करके अपने प्रिय भक्त की रक्षा की। द्वापर युग में जब श्यामसुन्दर के सब सखाओं ने असह्य प्यास से पीड़ित होकर कालिय दह का विषैला जल पी लिया और मृत्यु के ग्रास बन गये, उस समय कृपासिन्धु गोविन्द ने अपनी कृपापूर्ण दृष्टि से देखकर उन्हें जीवित कर दिया। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे प्रभु ऐसे भक्तवत्सल हैं, इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसके साथ उनकी उपमा दी जा सके।

जाको मनमोहन अंग करै

जिसको भगवान् श्री कृष्ण ने अंगीकार कर लिया, सारा संसार उससे बैर करने पर भी उसके सिर का एक बाल भी टेढ़ा नहीं कर सकता (हाथ-पाँव तो दूर, सिर का एक बाल भी नहीं उखाड़ सकता) इसका प्रमाण क्या है? हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद जी का वध करने के लिए अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार किया लेकिन प्रह्लाद जी बिलकुल भी नहीं डरे। हिरण्यकशिपु की सारी शक्ति असफल हो गयी। आज भी (भगवान् की कृपा के फलस्वरूप) उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव जी नभमंडल में अविचल राज्य कर रहे हैं (वहाँ कोई नहीं पहुँच सकता, इन्द्र भी नहीं पहुँच सकते)। जब दुःशासन ने द्रुपद सुता द्रौपदी का अपमान करते हुए उनकी साड़ी को जोर से खींचा, उस समय भगवान् ने उनकी लज्जा का निर्वाह किया। भगवान् ने अम्बरावतार ग्रहण कर लिया, दिव्य रेशमी साड़ियों के

ढेर लग गये, दस हजार हाथियों की ताकत वाला दुःशासन साड़ी खींचते-खींचते थक गया और गिर पड़ा, इस तरह भगवान् ने दुर्योधन के अभिमान को चूर-चूर कर डाला। ब्राह्मण भक्त राजा नृग को असंख्य गो दान के उपरान्त भी विप्र शाप वश गिरगिट योनि धारण कर दीर्घकाल तक अँधेरे कुँएं में वास करना पड़ा, इसी प्रकार राजा बलि को वेद पढ़ने के बाद भी घाटा हुआ [1](क्योंकि उनके गुरु शुक्राचार्य जी ने शाप दे दिया था), इतने पर भी दीनों पर दया करने वाले, दया की निधि एवं कृपासागर श्री कृष्ण ने उन पर अनुग्रह किया, इस अनन्त करुणा गाथा का बखान कौन कर सकता है? ब्रज को नष्ट करने के लिए जब देवराज इन्द्र ने भयंकर क्रोध किया और प्रलयंकारी वर्षा प्रारम्भ कर दी तो नन्द के लाला ने गिरिराज गोवर्धन को धारण करके ब्रजवासियों की रक्षा की और 'गिरधर' नाम से त्रिलोकी में उनका यश फैला। इन्द्र के क्रोध से ब्रज का कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। जिन गिरधर गोपाल का विरद

जाको मनमोहन अंग करै ।
ताको केस खसै नहिं सिर ते, जो जग बैर परै ॥
हिरनकसिपु-परहारि थक्यौ, प्रहलाद न नेकु डरै ।
अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत, अबिचल राज करै ॥
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कुरुपति चीर हरै ।
दुरजोधन कौ मान भंग करि, बसन प्रबाह भरै ॥
विप्र भगत नृप अंधकूप दियो, बलि पढ़ि बेद छरै ।
दीनदयाल कृपालु दयानिधि, कापै कह्यो परै ॥
जब सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर, क्रोध न कछू सरै ।
ब्रज-जन राखि नंद कौ लाला, गिरिधर बिरद धरै ॥
जाकौ बिरद है गर्ब-प्रहारी, सो कैसैं बिसरै ।
'सूरदास' भगवंत-भजन करि, सरन गए उबरै ॥

[1] मुद्रण की त्रुटिवश गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'सूर विनय पत्रिका' में इन पंक्तियों "विप्र भगत नृप अंधकूप दियो, बलि पढ़ि बेद छरै। दीनदयाल कृपालु दयानिधि,कापै कह्यो परै ॥" को नहीं दिया गया है किन्तु ये महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ हैं और सूरदास जी के प्राचीन उपलब्ध इस पद में ये २ पंक्तियाँ प्राप्त हैं और इसमें विशेष रहस्य ये है कि राजा बलि ने वैदिक धर्म की विधि से यज्ञ करके त्रिलोकी को विजित कर लिया। देवता स्वर्ग से पलायन कर गये तब देवमाता अदिति की आराधना के फलस्वरूप भगवान् वामन अवतार ग्रहण करके बलि की यज्ञशाला में भिक्षा माँगने गये। भगवान् ने उनसे युद्ध नहीं किया क्योंकि बलि अत्यधिक गुरु भक्त थे। बलि की गुरु भक्ति के प्रभाव से स्वयं परमेश्वर की भी उसके ऊपर कोई प्रभुता नहीं चल पायी। स्वयं गोस्वामी जी ने वर्णन किया है – बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु है द्विज माँगी भीख। ऐसी हरि करत दास पर प्रीति ॥ (तुलसी विनय पत्रिका – ९८)। गुरु भक्त के प्रति भगवान् विशेष प्रसन्न रहते हैं, स्वयं उन्होंने सुदामा जी से ये वचन कहे हैं – "नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा। तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥" (भागवत १०-८०-३४) वामन भगवान् द्वारा ३ पग पृथ्वी की याचना करने और बलि द्वारा दान हेतु प्रस्तुत देखकर गुरु शुक्राचार्य ने अपने शिष्य को मना किया किन्तु दानशील हरिभक्त ने गुरु आज्ञा उल्लंघन कर दिया, इस पर गुरुदेव ने बलि को शाप दे दिया, यद्यपि वह सत्य प्रतिज्ञ थे और शाप के पात्र नहीं थे। राजा बलि क्षरित हुए गुरु शाप से फिर भी भगवान् ने उन्हें अंगीकार कर लिया, इन्द्र की अमरावती से भी अधिक वैभवशाली सुतललोक का राज्य उन्हें प्रदान किया तथा उनके महल में स्वयं द्वारपाल बनकर कृपा की वर्षा करते रहे। भगवान् के कृपा बाहुल्य के फलस्वरूप भक्ति के प्रधान १२ आचार्यों में भी बलि को सम्मिलित किया गया। स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः। प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ (भागवत ०६-०३-२०)

ही है अभिमान नष्ट करना, उनको भला कैसे भूला जा सकता है? सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् का भजन करो, उनकी शरण में जाने पर ही भव सागर से पार हुआ जा सकता है।

जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिं

जिसका मन श्री नंदलाल के प्रेम में रंग गया फिर संसार में कहीं भी उसकी आसक्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार मछली को यदि दूध में डाल दिया जाए तो बिना जल के वह जीवित नहीं रह सकती। जिसको श्यामसुन्दर इस प्रेम-रस को पिलाते हैं वह स्वभाव से अत्यधिक कोमल (विनम्र) बन जाता है और प्रेम- रस में डूब जाता है। जिस प्रकार एक शूरवीर युद्धभूमि में अत्यधिक वीरता के साथ युद्ध करता है किन्तु घायल हो जाने पर अपनी पीड़ा किसी को अभिव्यक्त नहीं करता है तथा जिस प्रकार यदि किसी गूँगे को गुड़ खाने को दिया जाए तो उसके स्वाद को केवल मन में अनुभव कर सकता है किन्तु मुँह से बोलकर उसकी मिठास को नहीं बता सकता है। जैसे नदी जब समुद्र में मिल जाती है तो उसका पूर्व स्वरूप विलीन हो जाता है और पुनः अपने 'नदी रूप' में नहीं आती है, सूरदास जी कहते हैं कि उसी प्रकार कमलनयन श्रीकृष्ण के प्रेमी भक्त का चित्त भी उनकी रूप माधुरी में ऐसा डूब जाता है कि फिर वहाँ से अन्यत्र कहीं अन्य विषयों में नहीं जाता है।

जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिं, ताहि और नहिं भावै ।
जौ लै मीन दूध मैं डारै, बिनु जल नहिं सचु पावै ।
अति सुकुमार डोलत रस-भीनौ, सो रस जाहि पियावै ॥
ज्यौं सूरा रण घूम चलत हैं पीर न काहू जनावे हो ।
ज्यौं गूँगौ गुर खाइ अधिक रस सुख-सुवाद न बतावै ॥
जैसें सरिता मिलै सिंधु कौं, बहुरि प्रबाह न आवै ।
ऐसें 'सूर' कमल-लोचन हों चित नहिं अनत डुलावै ॥

जैसें राखहु तैसें रहौं

हे नाथ ! आप मुझको जिस प्रकार रखेंगे, मैं उसी प्रकार रहूँगा। आप अपने भक्त के सुख-दुःख को भली प्रकार जानते हैं फिर मैं अपने मुख से आपको क्या बताऊँ? हे कृपानिधि ! आपकी दया से यदि भोजन मिलेगा तो उसे ग्रहण कर लूँगा और यदि भोजन न मिले तो सहज भाव से भूख सहन कर लूँगा। यदि कभी घोड़े या हाथी पर बैठने को मिलेगा तो उस पर बैठ जाऊँगा और यदि कभी स्वयं बोझा ढोने को मिलेगा तो प्रेम से उसे वहन करूँगा। हे कमलनयन घनश्याम ! मैं तो

आपका अनुचर बनकर रहूँगा । सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु ! अपने भक्तों के लिए आप कृपा की निधि हैं अतः मैंने आपके ही चरणों की शरण ग्रहण कर ली है ।

जैसें राखहु तैसें रहौं ।
जानत हौ दुख-सुख जब सब जन के, मुख करि कहा कहौं ॥
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहुँक भूख सहौं ।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग महागज, कबहुँक भार बहौं ॥
कमल-नयन घनस्याम मनोहर, अनुचर भयौ रहौं ।
'सूरदास' प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं ॥

जे घट अन्तर हरि सुमिरै

जो अपने हृदय में भगवान् श्री हरि का स्मरण करता है, काल यदि उससे रुष्ट भी हो जाए तो उसका कुछ नुकसान नहीं कर सकता क्योंकि उस भक्त ने अपने चित्त में भगवान् के चरण कमलों को धारण कर रखा है। प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु ने उन पर अत्यधिक क्रोध किया, प्रह्लाद जी स्वयं नाम कीर्तन करते और बालकों से कराते थे तो हिरण्यकशिपु प्रह्लाद के प्रति द्वेष से भर गया (उसने प्रह्लाद जी को दारुण कष्ट दिए) किन्तु प्रह्लाद की रक्षा के लिए भगवान् खम्भे को फाड़कर नृसिंह रूप से प्रकट हुए और असुर हिरण्यकशिपु के प्राण हर लि ए। हजारों वर्षों तक गज और ग्राह का युद्ध चलता रहा, जब गजराज जल में डूबने लगा तो अन्त समय में उसने भगवान् का ध्यान किया, उसी समय उसकी रक्षा के लिए भगवान् सुदर्शन चक्र लेकर वैकुण्ठ से दौड़े चले आये और ग्राह का वध करके गजराज की रक्षा की। अजामिल ने ब्राह्मण होकर भी बड़े-बड़े अपराध किए, अंतकाल में जब यमदूत उसको लेने आये तो उनको देखकर वह भय से घबरा उठा और अपने पुत्र नारायण का नाम उच्च स्वर से लेकर उसे पुकारा, उसी समय उसकी रक्षा के लिए भगवान् के पार्षद वैकुण्ठ से दौड़े हुए आये और यमदूतों से अजामिल को बचा लिया। इसी प्रकार जब कभी भी भक्तों पर भीषण संकट आये तो भगवान् ने सभी अवसरों पर उन विपदाओं से अपने भक्तों की रक्षा की।

जे घट अन्तर हरि सुमिरै ।
ताकौ काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै ॥
कोपै तात प्रहलाद भगत कौं, नामहि लेत जरै ।
खंभ फार नरसिंह प्रगट है, असुर के प्रान हरै ॥
सहस बरस गज युद्ध करत भए, छिन इक ध्यान धरै ।
चक्र धरैं बैकुँठ तैं धाए, वाकी पैज सरै ॥
अजामील द्विज सों अपराधी, अंतकाल बिडरै ।
सुत-सुमिरत नारायन-बाणी, पार्षद धाइ परै ॥
जहँ-जहँ दुसह कष्ट भक्तनि कौं, तहँ तहँ सार करै ।
'सूरजदास' स्याम सेये तैं दुस्तर पार तरै ॥

सूरदास जी कहते हैं कि जब भी कोई भगवान् श्यामसुन्दर की सेवा करता है, उनकी आराधना करता है तब वह इस भयंकर माया से पूर्ण भवसागर को सहज ही पार कर लेता है।

जो सुख होत गुपालहि गाये

श्री गोपाल जी के यश का गान करने से जो सुख मिलता है, वह सुख न तो जप और तप करने में मिलता है, न ही पृथ्वी के करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से ही वह सुख मिलता है। जिन भक्तों का चित्त भगवान् के चरण कमलों में आसक्त है, वे भगवान् द्वारा दिए जाने पर भी चारों पदार्थ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को ग्रहण नहीं करते हैं। जिस भक्त के हृदय में श्री नन्दनन्दन का वास है वह तीनों लोकों की संपत्ति को तृण के समान अत्यंत तुच्छ समझता है। इस प्रकार का ब्रजरसरसिक, धामनिष्ठभक्त ब्रज-वृन्दावन, यमुना और वंशीवट छोड़कर वैकुण्ठ भी जाना नहीं चाहता है। सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार का भक्त सदा श्री हरि का स्मरण करता है जिससे उसको कभी भी भव बंधन में नहीं आना पड़ता है।

जो सुख होत गुपालहि गाये ।
सो सुख होत न जप-तप-कीन्हें, कोटिक तीरथ न्हाये ॥
दिये लेत नहिं चारि पदारथ, चरन-कमल चित लाये ।
तीन लोक तृन सम करि लेखत, नंदनन्दन उर आये ॥
बंशीबट, बृन्दावन, जमुना तजि वैकुण्ठ न जावै ।
'सूरदास' हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आवै ॥

जौ हम भले बुरे तौ तेरे

हे प्रभु ! यदि मैं अच्छा हूँ या बुरा हूँ लेकिन हूँ तो केवल आपका किसी अन्य का नहीं। हे स्वामी ! मेरी विनती सुनिए कि अब मेरे दोषों और गुणों की निन्दा या प्रशंसा आपके ही हाथ में है। संसार के समस्त विषयों का त्याग कर मैं आपकी शरण में आया हूँ और मैंने दृढ़ता से अपने हृदय में आपके चरणों को स्थापित कर लिया है। आपकी महिमा और आपके बल से निर्भय होकर मैं सब ओर से निःशंक हो गया हूँ और आपका गृह सेवक बन गया हूँ।

जौ हम भले बुरे तौ तेरे ।
तुम्हें हमारी लाज-बड़ाई, बिनती सुनि प्रभु मेरे ॥
सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहेरे ।
तव प्रताप बल बदत न काहू, निडर भए घर चेरे ॥
और देव सब रंक-भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरि कृपा ते, पाए सुख जु घनेरे ॥

अन्य सभी देवता तो अत्यधिक दरिद्र और भिखारी हैं, इन कंगलों का मैंने पूरी तरह त्याग कर दिया है। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आपकी कृपा से मैंने परमानन्द की प्राप्ति कर ली है।

तुम कब मोसौ पतित उधार्‌यो

हे प्रभु ! आपने मेरे जैसे पतित का उद्धार भला कब किया? आपका विरद है पतितों को पावन करना, दीनों पर दया करना लेकिन आपने आज तक बिना किसी साधन के किसी को कहाँ तारा है? गीध (जटायु), व्याध, गजराज, गौतम पत्नी अहिल्या को तारने में कोई आपकी प्रशंसा नहीं है (उनके स्वयं के भी सत्कर्म थे)। गणिका (वैश्या) का उद्धार भी उसके स्वयं के सत्कर्म से हुआ क्योंकि वह तोते को प्रतिदिन राम नाम का उच्चारण कराती थी लेकिन यश आपको मिल गया कि प्रभु ने गणिका का उद्धार किया। अजामिल भी ब्राह्मण था और पतित होने से पहले वह आपका शुद्ध दास था, उस बेचारे की थोड़ी सी भूल से उसको महापतित होना पड़ा किन्तु फिर पुत्र के बहाने नारायण नाम लेने से वह वैकुण्ठ चला गया; आपने इन सब भक्तों को पतित जानकार उद्धार किया जबकि इनका कोई दोष नहीं था। आपकी महिमा मैं तब जानूँगा जब मुझ सूरदास जैसे अधम और क्रूर कवि का उद्धार आप करेंगे।

तुम कब मोसौ पतित उधार्‌यो ।
काहे कौं हरि बिरद बुलावत, बिन मसकत कौ तार्‌यो ॥
गीध, ब्याध, गज गौतम की तिय, उन कौ कौन निहोरौ ।
गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तेरौ ॥
अजामील तौ बिप्र, तिहारौ हुतौ पुरातन दास ।
नैंकु चूक तैं यह गति कीनी, पुनि बैकुंठ निवास ॥
पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यौ न कोऊ खोट ।
तौ जानौं जौ मोहि तारिहौ, 'सूर' कूर कबि ठोठ ॥

तुम तजि और कौन पै जाउँ

आपको छोड़कर मैं और किसके पास जाऊँ? ऐसा कौन है जिसके द्वार पर जाकर मैं अपने मस्तक को झुकाऊँ? ऐसा कौन है जिसके हाथों अपने को बेच दूँ? त्रिलोकी में ऐसा कौन प्रभावशाली दाता है जिसके दिए दान से मेरी तृप्ति हो जायेगी? अंतकाल में केवल आपके स्मरण से ही जीव की सद्गति होती है, आपको छोडकर कल्याण का और कहीं ठिकाना नहीं है। आपने दरिद्र सुदामा को अयाचक बना दिया, इतना वैभव दिया कि फिर कभी जीवन में कुछ पाने की कामना नहीं हुई, साथ ही सर्वोच्च अभय पद देकर उन्हें अंत में अपने धाम में निवास दिया। आपने

उन्हें इस पृथ्वी पर कामधेनु, चिंतामणि तथा कल्पवृक्ष भी प्रदान किया । हे नाथ ! इस अत्यंत भयंकर भवसागर को देखकर मेरे मन में अत्यधिक भय उत्पन्न हो रहा है।

तुम तजि और कौन पै जाउँ ।
काके द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ बिकाउँ ॥
ऐसौ को दाता है समरथ, जाके दिएँ अघाउँ ।
अन्त काल तुम्हरैं सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं दाउँ ॥
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय पद ठाउँ ।
कामधेनु, चिंतामनि दीन्हौं, कल्पबृच्छ-तर छाउँ ॥
भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन मैं अधिक डराउँ ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनौ प्रन, 'सूरदास' बलि जाउँ ॥

सूरदास जी कहते हैं कि प्रभु आपका नाम है – पतितपावन, दीनबन्धु, दीनानाथ, अपने इस विरद को स्मरण करके मुझ पर कृपा कीजिए, मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ।

तुम प्रभु मोसों बहुत करी

हे प्रभु ! आपने मेरे ऊपर बहुत अनुग्रह किया है। भजन करने के लिए आपने मुझे देव-दुर्लभ मनुष्य शरीर प्रदान किया लेकिन मैं इतना पापी हूँ कि इसका लाभ नहीं उठा सका। गर्भवास के समय मैंने अत्यधिक कष्ट सहा, मुख मल-मूत्र में नीचे की ओर लटका था, ऐसे भयंकर स्थान में भी आपने मुझे विस्मृत नहीं किया। माँ के उदर स्थित जठराग्नि से आपने मेरे शरीर को जलने नहीं दिया अपितु कंचन के समान आपने मेरी काया को उज्जवल बना दिया। मैं इतना अधम हूँ कि गर्भ से बाहर इस संसार में आकर मैंने पाप ही पाप किये और इस प्रकार आदि से अन्त तक मनुष्य जन्म को निरर्थक कर दिया। सूरदास जी कहते हैं कि मैं तो पतित हूँ किन्तु आपने मुझ पतित का उद्धार करके अपने पतित-पावन विरद को सिद्ध करके दिखा दिया।

तुम प्रभु, मोसों बहुत करी ।
नर-देही दीनी सुमिरन कौं, मो पापी ते कछु न सरी॥
गरभ-बास अति त्रास अधोमुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी ।
पावक जठर जरन नहिं दीन्हों, कंचन सी मम देह करी ॥
जग में जनमि पाप बहु कीन्हें, आदि अंत लौं सब बिगरी ।
'सूर' पतित, तुम पतित उधारन, अपने बिरद की लाज धरी ॥

नाथ सकौ तौ मोहि उधारौ

नाथ सकौ तौ मोहि उधारौ ।
पतितनि मैं बिख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ ॥
बड़े पतित पासंगहु नाहिं, अजामिल कौन बिचारौ ।
भाजे नरक नाम सुनि मेरौ, जम दीन्यो हठि तारौ ॥
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, जब न करौ जिय गारौ ।
'सूर' पतित कौं ठौर नहीं, तौ बहुत बिरद कत भारौ ॥

हे नाथ ! यदि आप कर सकते हैं तो मेरा उद्धार कर दीजिए । संसार में अब तक जितने भी पतित प्राणी हुए हैं उन सबसे अधिक प्रसिद्ध पतित मैं हूँ, किन्तु आपका नाम है पतित पावन। अब तक जितने भी भयंकर पतित हुए हैं वो मेरे सामने कुछ भी नहीं हैं फिर बेचारा अजामिल तो मेरे सामने है ही क्या? मैं इतना प्रबल पापी हूँ कि नरक भी मेरा नाम सुनकर भय से भाग खड़ा हुआ और यमराज ने भी मुझसे भयभीत होकर नरक में ताला लगा दिया (कि यदि यह महापतित नरक में आ गया तो नरक का अस्तित्त्व ही मिट जाएगा)। हे रमापति ! तुम अपने हृदय में गर्व मत करो, अब तक तुमने जिन पतितों को तारा वे मेरे सामने अत्यंत ही तुच्छ हैं। सूरदास जी कहते हैं कि यदि आपके दरबार में मेरे जैसे पतित के लिए आश्रय नहीं है तो फिर आप पतित पावन नामक सुयश का भार क्यों वहन करते हैं?

नीकैं गाइ गुपालहि मन रे

नीकैं गाइ गुपालहि मन रे ।
जा गायें निर्भय पद पाई अपराधीं अनगन रे ॥
गायौ गीध, अजामिल, गनिका, गायौ पारथ धन रे ।
गायौ स्वपच परम अघ-पूरन, सुत पायौ बाम्हन रे ॥
गायौ ग्राह ग्रसित गज जल में, खंभ बँधे तैं जन रे ।
गाऐं 'सूर' कौन नहिं उबर्‌यौ, हरि परिपालन पन रे ॥

अरे मन ! अच्छी तरह से गोपाल जी का गुणगान कर, जिनका गुणगान करने से, जिनके नाम का कीर्तन करने से अब तक अनगिनत अपराधियों ने निर्भय पद भगवद्धाम की प्राप्ति कर ली। उन गोपाल जी का गुणगान गीध (जटायु), अजामिल, गणिका (वैश्या) और पार्थ (अर्जुन) ने किया । महापापों से भरे चाण्डाल ने भगवान् का यश गाया, श्री हरि के गुणगान के प्रभाव से द्वारिका के ब्राह्मण ने अपने मरे पुत्र को जीवित अवस्था में पा लिया। जब गजराज ग्राह के द्वारा खींचे जाने पर जल में डूबने लगा तो उसने आर्त स्वर में भगवान् का गुणगान किया। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु द्वारा खम्भे में बाँधे गए प्रह्लाद जी ने सतत् हरि-गुणगान ही किया। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् की प्रतिज्ञा है

'भक्तों का पालन करने' की, वे उस प्रण को भलीभाँति निभाते हैं। भला ऐसा कौन है त्रिलोकी में जिसका 'श्रीहरि के गुणगान' से उद्धार न हुआ हो।

प्रभु मेरे गुन अवगुन न बिचारौ

प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न बिचारौ ।
कीजै लाज सरन आए की, रबि-सुत-त्रास निवारौ ॥
जोग-जज्ञ-जप-तप नहिं कीन्हौ, बेद बिमल नहिं भाख्यौ ।
अति रस-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, अनत नहीं चित राख्यौ ॥
जिहिं-जिहिं जोनि फिर्‌यो संकट बस तिहिं-तिहिं यहै कमायौ ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-ग्रसित है विषय परम बिष खायौ ॥
जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं, लै सुरतरु बिधि हाथ ।
मम कृत दोष लिखै बसुधा भरि, तऊ नहीं मिति नाथ ॥
तुमहिं समान और नहिं दूजौ, काहि भजौं हौं दीन ।
कामी, कुटिल, कुचील, कुदरसन, अपराधी, मति-हीन ॥
तुम तौ अखिल, अनंत, दयानिधि, अबिनासी, सुख-रासि ।
भजन-प्रताप नाहिं मैं जान्यौ, पर्‌यो मोह की फाँसि ॥
तुम सरबज्ञ, सबै बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि ।
मोह-समुद्र 'सूर' बूड़त है, लीजै भुजा पसारि ॥

हे प्रभु ! मेरे गुण-अवगुण का तनिक भी विचार मत कीजिए। मैं आपकी शरण में आया हूँ, अतः मेरी लाज रखिए तथा यम यातना से मेरी रक्षा कीजिए। मैंने कभी भी योग, यज्ञ, जप-तप आदि साधनों को नहीं किया और न ही कभी निर्मल वेद वाणी का पाठ किया। जूठन के लोभी कुत्ते के समान अनादिकाल से मैं विषय रस का भोगी बना रहा, मैं अपने मन को विषयों से कभी भी अलग नहीं हटा सका। संकटवश मैं चौरासी लाख योनियों में जिस भी योनि में गया वहाँ मैंने यही कमाई की – काम, क्रोध, मद और लोभ से ग्रसित होकर मैं सदा विषय रूपी परम विष को ही खाता रहा। यदि पर्वतों के स्वामी हिमालय को चूर्णकर उनकी स्याही बनायी जाय और उस स्याही को विशाल समुद्र में घोलकर कल्पवृक्ष की कलम बनाकर स्वयं ब्रह्मा जी भी मेरे किए हुए अवगुणों को सारी पृथ्वी पर लिखें तो भी कभी उनकी समाप्ति नहीं होगी। आपके समान (करुणासिंधु) कोई नहीं है, अतः मैं आपको छोड़कर और किसका भजन करूँ? मैं दीन-हीन, कामी, कुटिल, कुचाली, दर्शन के अयोग्य (अशुभ), अपराधी और बुद्धिहीन हूँ और दूसरी ओर आप तो अखिल जगत के स्वामी, अनन्त दयानिधि, अविनाशी और आनन्द की राशि हैं। मैं इतना मूढ़ हूँ कि आपके भजन की महिमा को आज तक नहीं जान पाया क्योंकि प्रबल मोह (अविद्या) की फाँसी से मैं बंधा हूँ। हे मुरारी ! आप तो सर्वज्ञ हैं, सब प्रकार से सामर्थ्यवान् और अशरण को शरण देने वाले हैं। सूरदास जी कहते हैं कि मैं मोह के समुद्र में डूब रहा हूँ, कृपा करके मेरी बाँह पकड़कर मुझे उबार लीजिए।

बड़ी है राम नाम की ओट

(इस जगत में) राम नाम का आश्रय सबसे बड़ा है। कोई भी जीव यदि प्रभु की शरण में आता है तो वो उसका त्याग नहीं करते बल्कि उस पर कृपा की धारा उड़ेल देते हैं। भगवान् की सभा (दरबार) में सभी लोग समान रूप से बैठते हैं, वहाँ बड़े-छोटे का कोई भेदभाव नहीं है। सूरदास जी कहते हैं कि जैसे पारस के स्पर्श से लोहे का दोष मिट जाता है (लोहा सोना बन जाता है) उसी प्रकार भगवान् के आश्रय से जीव के सारे अवगुण मिट जाते हैं।

बड़ी है राम नाम की ओट ।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा की कोट ॥
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट ।
'सूरदास' पारस के परसैं, मिटति लोह की खोट ॥

भक्त सकामी हू जो होइ

भगवान् कपिल अपनी माता देवहूति को उपदेश करते हुए कहते हैं कि यदि कोई सकामी भक्त भी है तो क्रम-क्रम से प्रगति करता हुआ अपना उद्धार कर लेता है। शनैः-शनैः (अपनी साधना के अनुसार) ब्रह्मलोक में जाता है फिर कल्पांत में ब्रह्मा जी के साथ ही भगवान् के चरणों में लीन हो जाता है। (इसके

भक्त सकामी हू जो होइ । क्रम-क्रम करिकै उधरै सोइ ॥
सनै-सनै बिधि लोकहिं जाइ । ब्रह्मा सँग हरि-पदहिं समाइ ॥
निष्कामी बैकुंठ सिधावै । जनम-मरन तिहि बहुरि न आवै ॥
त्रिबिध भक्ति कहौं सुनि अब सोइ । जातैं हरि-पद-प्रापति होइ ॥
एकै कर्म-योग कौं करैं । बरन-आसरम घर बिस्तरैं ॥
अरु अधर्म कबहूं नहिं करैं । ते नर याही बिधि नीस्तरैं ॥
एकै भक्ति-योग कौं करैं । हरि-सुमिरन पूजा बिस्तरैं ॥
हरि-पद-पंकज प्रीति लगावैं । ब्रह्म जानि सब सौं हित करैं ॥
ते हरि पद कौं या बिधि पावैं । क्रम-क्रम सब हरि-पदहिं समावैं ॥
कपिलदेव बहुरौ यौं कह्यौ । हमैं-तुम्हैं संबाद जु भयौ ॥
कलिजुग मैं यह सुनिहै जोइ । सो नर हरि-पद प्रापत होइ ॥
देवहूति सुज्ञान कौं पाइ । कपिलदेव सौं कह्यौ सिर नाइ ॥
आगें मैं तुम कौं सुत मान्यौ । अब मैं तुम कौं ईस्वर जान्यौ ॥
तुम्हारी कृपा भयौ मोहि ज्ञान । अब न ब्यापिहै मोहि अज्ञान ॥
पुनि बन जाइ कियौ तन-त्याग । गहि कै हरि-पद सौं अनुराग ॥
कपिलदेव सांख्यहि जो गायौ । सो राजा मैं तुम्हें सुनायौ ॥
याहि समुझि जो रहै लव लाइ । 'सूर' बसै सो हरिपुर जाइ ॥

विपरीत) जो निष्कामी भक्त होता है वह सीधे ही वैकुण्ठ धाम में प्रवेश करता है, उसे दुबारा कभी भी जन्म-मरण का बंधन नहीं व्यापता है। भगवान् कपिल कहते हैं कि अब मैं तीन प्रकार की भक्ति का निरूपण करता हूँ, जिससे जीव को हरिपद (भगवद्धाम) की प्राप्ति होती है। उसे (ध्यान से) सुनो। कुछ लोग तो कर्म योग की साधना करते हैं, गृहस्थाश्रम में रहकर वे वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं और अधर्म का आचरण कभी भी नहीं करते हैं। ऐसे मनुष्य इसी विधि का पालन करके सद्गति को प्राप्त करते हैं। दूसरे प्रकार के लोग भक्ति योग की साधना करते हैं, वे मन से श्री हरि का स्मरण करते हैं और शरीर से भगवान् के श्री विग्रह की सेवा-पूजा का विस्तार करते हैं। ऐसे भक्त भगवान् के चरणों में प्रेम करते हैं और जगत के जीवों मे ब्रह्म भाव रख के सभी से प्रेम करते हैं, ये भक्त इस विधि के पालन द्वारा हरि धाम को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार से सभी प्रकार के साधक क्रम से भगवद् धाम को जाते हैं। इसके बाद कपिल देव जी ने फिर से अपनी माता देवहूति से कहा – "हे माता ! हमारे-तुम्हारे इस संवाद को कलियुग में जो भी मनुष्य सुनेगा उसे निश्चय ही भगवद् धाम की प्राप्ति होगी।" भगवान् कपिल से इस प्रकार श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्तकर चरणों में शीश झुकाकर देवहूति बोलीं – "अभी तक तो मैं आपको अपना पुत्र मानती थी लेकिन अब मैंने जान लिया कि आप ईश्वर हैं। आपकी कृपा से मुझे दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हुई है, अब मुझे कभी भी अज्ञान नहीं व्यापेगा।" इसके बाद देवहूति जी वन में गयीं और श्री हरि के चरणों में अनुराग स्थापित करके नश्वर देह का त्याग कर दिया। भगवान् शुकदेव परीक्षित जी से कहते हैं – "हे राजन् ! भगवान् कपिल ने माता देवहूति को जिस सांख्य शास्त्र का उपदेश दिया, वह मैंने तुम्हें सुना दिया।" सूरदास जी कहते हैं कि इस उपदेश को समझ कर जो अपने हृदय में धारण करता है, उसे भगवद्धाम की प्राप्ति होगी।

भजहु न मेरे स्याम मुरारी

भजहु न मेरे स्याम मुरारी ।
सब संतनि के जीवन हैं हरि, कमल-नयन प्यारे, हितकारी ॥
या संसार-समुद्र, मोह-जल, तृष्ना-तरँग उठति अति भारी ।
नाव न पाई सुमिरन हरि कौ, भजन-रहित बूड़त संसारी ॥
दीन-दयाल, अधार सबनि के, परम सुजान, अखिल अधिकारी ।
'सूरदास' किहि तिहि तजि जाँचै, जन-जन-जाँचक होत भिखारी ॥

(अरे मनुष्यों !) मेरे श्याम मुरारी का भजन करो। ये कमल नयन श्री हरि सभी संतों के जीवन, प्यारे और हितकारी हैं। इस भवसागर में मोह का जल चारों ओर व्याप्त है और तृष्णा (विषय सुख की कामना) की अत्यन्त भयंकर लहरें उठ रही हैं। ऐसे भीषण भवसागर में यदि संसारी मनुष्य श्री हरि के स्मरण की नौका का आश्रय नहीं लेते हैं तो भजन रहित होकर अपार भव समुद्र में डूब जाते हैं। श्यामसुन्दर दीनों पर दया करने वाले, सभी के आधार, परम सर्वज्ञ और सर्व नियन्ता हैं।

सूरदास जी कहते हैं कि ऐसे समर्थ स्वामी को पाकर और किससे याचना करूँ? ऐसे प्रभु को छोड़कर जो जगत के तुच्छ प्राणियों से याचना करता है वह तो अत्यन्त दरिद्र भिखारी है।

मो सम कौन कुटिल खल कामी

(इस संसार में) मेरे समान कुटिल, दुष्ट और कामी व्यक्ति कौन है? हे करुणामय ! आप तो अन्तर्यामी हैं, आपसे भला क्या छिपा है? आपने मुझे भजन करने योग्य मनुष्य शरीर दिया लेकिन इसे पाकर भी मैंने आपको भुला दिया, आपका उपकार नहीं माना,

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सब के अन्तरजामी ॥
जो तन दियौ, ताहि बिसरायौ, ऐसौ, नमक-हरामी ।
भरि भरि उदर बिषै कौं धावत, जैसैं सूकर ग्रामी ॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयिनि सँग बिसरामी ।
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की, निसि-दिन करत गुलामी ॥
पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी ।
'सूरदास' प्रभु अधम-उधारन सुनियै श्रीपति स्वामी ॥

इतना बड़ा नमक हरामी (कृतघ्न) मैं हूँ। गाँव में रहने वाले मल भोजी सूकर की भाँति पेट को भोजन से पूरा भरकर विषय-भोग के लिए दौड़ा करता हूँ। महापुरुषों का जहाँ सत्संग होता है वहाँ जाने में मुझे आलस्य आता है लेकिन विषय-भोगियों की संगति में मुझे परम विश्राम (परम सुख) मिलता है। श्री हरि के चरणों के आश्रय को छोड़कर दिन-रात मैं भगवान् से विमुख संसारी मनुष्यों की गुलामी करता रहता हूँ। मैं महापापी, नीच, अपराधी और संसार के समस्त पतितों में विख्यात पतित हूँ। सूरदास जी कहते हैं कि हे श्रीपति ! आप तो अधम पापियों का उद्धार करने वाले हैं अतः मेरी विनती सुनिए (दया करके मुझ अधम शिरोमणि का उद्धार करें)।

हरि बिनु मीत न कोउ तेरे

हे मन ! मैं तुझसे पुकार कर कहता हूँ कि इस संसार में भगवान् को छोड़कर और कोई तेरा मित्र नहीं है, अतएव तू मेरे श्री गोपाल जी का ही भजन कर। यह संसार विषय रूपी भयंकर विष का

हरि बिनु मीत न कोउ तेरे ।
सुनि मन कहौं पुकारि मैं तोसौं, भजि गोपालहि मेरे ॥
यह संसार बिषय-बिष-सागर, रहत सदा सब घेरे ।
'सूर' स्याम बिनु अंतकाल में, कोउ न आवत नेरे ॥

ऐसा अथाह समुद्र है जो जीव को सदा सर्वदा चारों ओर से घेरे रहता है। सूरदास जी कहते हैं कि मृत्यु काल में श्यामसुन्दर के अलावा और कोई तेरे पास नहीं आएगा (तब तुझे पता पड़ेगा कि वास्तव में श्री कृष्ण के अलावा अपना सच्चा साथी संसार में कोई नहीं है)।

रे सठ बिनु गोबिंद सुख नाहीं

रे शठ प्राणी, (इस बात को विचारपूर्वक समझ ले) गोविन्द के बिना इस संसार में कहीं भी सुख नहीं है (जब तक गोविन्द से विमुख रहे गा)। तेरा दुःख दूर करने में ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ भी सफल नहीं होंगी। शिव, ब्रह्मा और सनकादिक मुनिगणों की सामर्थ्य भी सीमित है अतएव जगत पिता जगदीश की शरण के बिना तीनों लोकों में कहीं भी सुख नहीं है। सूरदास जी कहते हैं कि मैं अन्य सभी देवताओं के बारे में गहरी छानबीन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अन्य देवगण बादल की छाया के समान सीमित (क्षण भंगुर) फल देने वाले हैं, उनसे शाश्वत सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए श्री भगवान् का भजन किये बिना दुःख कभी भी समाप्त नहीं होगा।

रे सठ, बिनु गोबिंद सुख नाहीं ।
तेरौ दुःख दूरि करिबे कौं, रिधि सिधि फिरि-फिरि जाहीं ॥
सिव, बिरंचि, सनकादिक मुनिजन इनकी गति अबगाहीं ।
जगत-पिता जगदीस सरन बिनु, सुख तीनौं पुर नाहीं ॥
और सकल मैं देखे ढूँढ़े, बादर की सी छाहीं ।
'सूरदास' भगवंत-भजन बिनु, दुख कबहूँ नहिं जाहीं ॥

रे मन मूरख जनम गँवायौ

अरे मूर्ख मन, तूने मनुष्य जन्म को यों ही गँवा दिया। अभिमान से ग्रसित होकर संसार की विषयासक्ति में ही तू सदा लिप्त रहा और श्यामसुन्दर की शरण में कभी नहीं गया। यह संसार तो सेमर वृक्ष के फल के समान देखने में बड़ा सुन्दर है लेकिन अन्दर से असार है। जैसे तोता सेमर के फल की सुंदरता से मोहित होकर उसे खाने के लिए चोंच मारता है तो उसमें केवल रुई भरी होती है और वह भी उड़ जाती है, हाथ कुछ नहीं आता है।

रे मन मूरख, जनम गँवायौ ।
करि अभिमान बिषय-रस गीध्यौ, स्याम सरन नहिं आयौ ॥
यह संसार सुवा-सेमर ज्यौं, सुंदर देखि लुभायौ ।
चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयौ ॥
कहा होत अब के पछिताऐं, पहिलैं पाप कमायौ ।
कहत 'सूर' भगवंत भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायौ ॥

(यही हाल संसार के लुभावने असत्य विषयों का है)। पहले तो तूने दिन-रात पाप ही पाप किया, अब अवसर बीत जाने पर पछताने से क्या लाभ? सूरदास जी कहते हैं कि यदि तू भगवान् का भजन नहीं करेगा तो भविष्य में सिर पीटकर पछताना ही पड़ेगा।

सरन गए को को न उबार्‌यो

ऐसा संसार में कौन है, भगवान् की शरण में जाने पर जिसका उन्होंने उद्धार नहीं किया। जब-जब संतों पर विपत्ति आयी, सुदर्शन चक्र लेकर भगवान् ने उनकी रक्षा की। जब दुर्वासा जी ने भक्तराज अम्बरीष पर क्रोध किया तो भगवान् ने अम्बरीष जी पर कृपा की (उनकी रक्षा की) और दुर्वासा का क्रोध निवारण किया।

सरन गए को को न उबार्‌यो।
जब जब भीर परी संतनि कौं, चक्र सुरदसन तहाँ संभार्‌यो॥
भयौ प्रसाद जु अम्बरीष कौं, दुरबासा कौ क्रोध निवार्‌यो।
ग्वालनि हेत धर्‌यौ गोबर्धन, प्रगट इन्द्र कौ गर्व प्रहार्‌यो॥
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मार्‌यो।
नरहरि रूप धर्‌यो करुनाकर, छिनक माहिं उन नखनि बिदार्‌यो॥
ग्राह ग्रसत गज कौ जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टार्‌यो।
'सूरस्याम' बिनु और करै को, रंग-भूमि में कंस पछार्‌यो॥

ब्रज में गोपियों-ग्वालों की रक्षा के लिए भगवान् ने गोवर्धन पर्वत को एक उँगली पर धारण करके इन्द्र के घमण्ड को चूर-चूर कर दिया। भगवान् ने भक्त प्रह्लाद पर भी कृपा की, उनके लिये खम्भे को फाड़कर प्रकट हो गये और करुणासिन्धु प्रभु ने नरसिंह रूप धारण कर क्षण भर में ही अपने बड़े-बड़े नाखूनों से हिरण्यकशिपु का पेट फाड़कर उसका वध कर दिया। (ग्राह और गज के युद्ध में) जब ग्राह गजराज का पाँव घसीटकर गहरे जल में ले गया तब जल में डूबते समय उसे भगवान् की स्मृति आयी और उसके द्वारा भगवान् के नाम का उच्चारण होने पर प्रभु ने उसके भीषण दुःख को दूर कर दिया। रंगभूमि (अखाड़े) में श्यामसुन्दर ने कंस को पछाड़ दिया, इस प्रकार उनके बिना भक्तों की रक्षा और कौन कर सकता है?

सोइ रसना जो हरि-गुन गावै

जिह्वा की सार्थकता इसी में है कि वह भगवान् का गुणगान करे। नेत्रों की चतुरता इसी में है कि वे भगवान् मुकुन्द की शोभा को निहारकर उसका ध्यान करें। सच्चा निर्मल चित्त तो वही है जिसे भगवान् कृष्ण के बिना संसार में और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। कर्णों का महत्व इसी में है कि वे सदा हरि कथामृत का जी भरकर पान किया करें। हाथों की शोभा तभी है जब वे श्यामसुन्दर

सोइ रसना जो हरि-गुन गावै ।
नैननि की छबि यहै चतुरता, जौ मुकुंद-मकरंदहि ध्यावै ॥
निर्मल चित तौ सोइ साँचौ, कृष्न बिना जिहि और न भावै ।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावै ॥
कर तेई जे स्यामहि सेवैं, चरननि चलि बृंदावन जावै ।
'सूरदास' जैयै बलि वाकी, जो हरि जू सौं प्रीति बढ़ावै ॥

की सेवा किया करें। चरणों की महत्ता तभी है जब उनके द्वारा चलकर वृन्दावन धाम को जाया जाये। सूरदास जी कहते हैं कि मैं उसकी बलिहारी जाता हूँ जो श्री हरि से प्रेम बढ़ाता है।

हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ

हे मेरे प्रभु ! मेरे अवगुणों पर ध्यान मत दीजिये। आपका नाम समदर्शी है, इसलिए अपने नाम को सार्थक करते हुए मुझे भव सागर के पार करिए। एक लोहा (चाकू) भगवान् की पूजा में प्रयुक्त होता है (वह भगवान् को अर्पित फलों के काटने में उपयोग किया जाता है) और एक लोहा (चाकू) कसाई के घर में होता है (जिससे वह पशुओं को काटता है) किन्तु समदर्शी

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ ॥
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ ।
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ ।
जब मिलि गए तब एक-बरन है, गंगा नाम परौ ॥
तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, 'सूर' सु मिलि बिगरौ ।
कै इनकौ निरधार कीजियै कै प्रन जात टरौ ॥

पारस इस भेद को नहीं मानता है, वह तो दोनों प्रकार के लोहे का अपने द्वारा स्पर्श होने पर उन्हें सच्चा सोना बना देता है। एक नदी कहलाती है और एक नाला कहलाता है जिसमें गन्दा पानी भरा होता है लेकिन जब दोनों गंगा जी में मिलते हैं तो अपनी अलग सत्ता खोकर गंगा के ही नाम से जाने जाते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि यह शरीर माया कहलाता है और जीव अपने शुद्ध स्वरूप में ब्रह्म कहलाता है लेकिन जब जीव देहाभिमान से ग्रसित हो जाता है तो वह अपने शुद्ध स्वरूप से च्युत हो जाता है। अब आप ही जीव को कृपा करके उसके शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित कर दीजिए नहीं तो जीव-उद्धार करने का आपका प्रण टला जाता है।

हरि बिनु आपनौ को संसार

श्री हरि को छोड़कर संसार में अपना कौन है? (अर्थात् कोई अपना नहीं है) यह संसार काल रूपी नदी की भीषण धार है जिसमें माया, लोभ और मोह फँसाने वाली प्रबल बाधाएँ हैं। जैसे नाव में बैठते समय थोड़ी देर के लिए लोगों का आपस में साथ हो जाता है लेकिन नाव से उतरने पर फिर साथ नहीं रहता वैसे ही घर में धन, स्त्री, सुख-संपत्ति आदि का साथ भी क्षण-भंगुर है। इनके बिछुड़ने में देर नहीं लगती। दुर्लभ मनुष्य जन्म और श्रीहरि का नाम बार-बार नहीं मिलता। अरे गँवार! इस क्षण भर में नष्ट होने वाले शरीर के कारण व्यर्थ में अभिमान क्यों करता है? जैसे पत्तों से घिरे हुए कुँएं में गिरा हुआ अन्धा व्यक्ति कुँएं की खार (जल के द्वारा बने गड्ढे) और पनार (ईंटों के बनाए हुए पैर टिकाने के स्थान) को नहीं जानता (उनको ढूँढ़कर उनके सहारे बाहर नहीं निकल पाता) वैसे ही सूरदास जी कहते हैं कि मैं उपदेश तो बहुत देता हूँ (मनुष्यों को भव बंधन से मुक्त होने का उपाय बार-बार बताता हूँ) किन्तु ये माया बद्ध अज्ञानी मनुष्य कितनी बार उपदेश सुन-सुनकर चले गये (और वापस विषयासक्ति में बँध गये, उपदेश का उनके जीवन में कोई प्रभाव नहीं पड़ा)।

हरि बिनु आपनौ को संसार ।
माया-लोभ-मोह हैं चाँड़े, काल-नदी की धार ॥
ज्यौं जन संगति होति नाव में, रहित न परसैं पार ।
तैसैं धन-दारा-सुख-संपति, बिछुरत लगै न बार ॥
मानुष-जनम, नाम नरहरि कौ, मिलै न बारंबार ।
इहि तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार ॥
जैसैं अंधौ अंध कूप में, गनत न खार-पनार ।
तैसेहिं 'सूर' बहुत उपदेसैं, सुनि सुनि गे कै बार ॥

अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी

भगवान् श्री कृष्ण ही अनाथों के नाथ और जीवों के सच्चे स्वामी हैं। हे शार्ङ्गधर (शार्ङ्गधर धनुष धारण करने वाले), हे गरुड़गामी (गरुड़ पर सवारी करने वाले), हे हरि! आप जीवों के समस्त पापों का नाश करने वाले हैं, हे नाथ! मेरे ऊपर आप कृपा करें। मैं अपार भवसागर में गिर पड़ा हूँ, मेरा हाथ पकड़कर मुझे बाहर निकालिए। मैं काम-कातर हो कर सदा मिथ्या विषयों की ही कामना

किया करता हूँ। आप मेरे इस दोष को अपने चित्त में मत धारण कीजिए (इस पर ध्यान मत दीजिए) । सूरदास जी कहते हैं कि हे नन्दनन्दन ! मैं आपसे विनती करता हूँ, मेरी विनय सुनिए । आप तो अन्तर्यामी हैं (सबके हृदय की जानने वाले हैं), मैं आपसे अपने हृदय के भावों को और अधिक स्पष्ट करके क्या कह सकता हूँ?

अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी ।
नाथ सारंगधर, कृपा करि मोहि पर ।
सकल अघ-हरन हरि गरुड़गामी ॥
पर्‍यौ भव-जलधि में, हाथ धरि काढ़ि मम ।
दोष जनि धारि चित काम-कामी ॥
'सूर' बिनती करै, सुनहु नंद-नंदन तुम ।
कहा कहौं खोलि कै अँतरजामी ॥

हरि सौं मीत न देख्यौ कोई

मैंने (इस जगत में) श्री हरि के समान जीवों का सच्चा मित्र और कोई नहीं देखा। संकटकाल में उनका सुमिरन करते ही तत्क्षण प्रभु आकर अपने भक्त की रक्षा करते हैं। ग्राह के द्वारा पाँव पकड़े जाने पर (जल में डूबते समय) जब गजराज ने उन्हें पुकारा तो भगवान् शीघ्र ही वैकुंठधाम, गरुड़ और लक्ष्मी जी का त्याग करके अतिशीघ्र हाथ में सुदर्शन चक्र लेकर अपने दास के पास दौड़े आये। दुर्वासा जी ने जब भक्तराज अम्बरीष पर भयंकर कोप करते हुए कृत्या प्रकट की तो भगवान् ने सुदर्शन चक्र के द्वारा उसका निवारण कर अम्बरीष के शीलगुण की रक्षा की। समस्त देव, ऋषि-मुनिवृन्द साक्षी हैं कि चक्र के पीछा करने पर दुर्वासा जी अपनी रक्षा के लिये ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकों में भागते फिरे। विदुर जी के बुद्धि कौशल द्वारा भगवान् ने ही पाण्डवों की लाक्षागृह में जलने से रक्षा की थी। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आपने अपने भक्तों की अनेकों प्रकार की विपत्तियों का सदा सर्वदा ही निवारण किया है।

हरि सौं मीत न देख्यौ कोई ।
बिपति-काल सुमिरत, तिहिं औसर आनि तिरीछौ होई ॥
ग्राह गहे गजपति मुकरायौ, हाथ चक्र लै धायौ ।
तजि बैकुंठ गरुड़ तजि श्री तजि, निकट दास कैं आयौ ॥
दुर्बासा कौ साप निवार्‍यौ, अंबरीष-पति राखी ।
ब्रह्मलोक-परजंत फिर्‍यो तहँ, देव-मुनी-जन साखी ॥
लाखागृह तैं जरत पांडु-सुत, बुधि-बल नाथ उबारे ।
'सूरदास' प्रभु अपने जनके नाना त्रास निवारे ॥

कृपा श्री लालन जू की चहिए

अगर श्री लाल जी (गोपाल जी) की कृपा चाहते हो तो ऐसा भाव रखना चाहिए कि श्री ठाकुर जी जो कुछ करते हैं-अच्छा ही करते हैं। उनके विधान के अनुसार सुख-दुःख जो कुछ भी प्राप्त होता है उसे सर्वात्म भाव से स्वीकार कर लेना चाहिए। अरी बुद्धि रूपी सखी ! यदि मन के प्रतिकूल कोई परिस्थिति आती है तो इसके लिये ठाकुर जी या किसी अन्य व्यक्ति को दोष न देकर अपने ही दोष का विचार करो और श्री लाल जी से कुछ मत कहो (न तो प्रभु पर दोषारोपण करो और न उनसे दुःख निवृत्ति की प्रार्थना करो)। सूरदास जी कहते हैं कि संकट निवारण के लिए भगवान् से कुछ भी न कहकर अनन्य भाव से उनकी शरण में बने रहो।

कृपा श्री लालन जू की चहिए ।
इनने करी करी सो आछी अपने सर पै सहिए ॥
अपनो दोष विचारि सखी री इनसों कछु न कहिए ।
'सूर' कछू कहिवे को नाहीं श्यामशरण है रहिए ॥

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी

मेरे हृदय की व्यथा आज तक कभी कम नहीं हुई। बिना गोपाल जी के इस शरीर का कष्ट कैसे दूर हो सकता है। सभी इन्द्रियाँ अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कर्म गली में खींच रही हैं। (जिस इन्द्रिय की जिस विषय में रुचि होती है, बाध्य करके उसी की आसक्ति के अनुसार कर्म करवा लेती है)। मैं आँखों में पट्टी बाँधकर (विवेकहीन होकर) कपट पूर्वक उसी विषय की ओर चल पड़ता हूँ, जहाँ ये इन्द्रियाँ मुझे विवश कर ले जाती हैं। यह मन असत्य है, शरीर असत्य है, जितने भी आरम्भ (कर्म) हैं वे सभी असत्य हैं। झूठे विषयी मनुष्यों का मुँह देखता हुआ,

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी ।
बिनु गोपाल बिथा या तन की, कस जाति कटी ॥
अपनी रुचि जितहीं-जित ऐंचति इंद्रिय कर्म-गटी ।
हौं तितहीं उठि चलत कपट लगि बाँधें नैंन-पटी ॥
झूठौ मन झूठी सब काया, झूठी आरभटी ।
अरु झूठनि के बदन निहारत मारत फिरत लटी ॥
दिन-दिन हीन छीन भइ काया दुख-जंजाल-जटी ।
चिंता कीन्हैं भूख भुलानी, नींद फिरति उचटी ॥
मगन भयौ माया-रस लंपट, समुझत नाहिं हटी ।
ताकैं मूंड़ चढ़ी नाचति है मीचऽति नीच नटी ॥
किंचित स्वाद स्वान-बानर ज्यौं, घातक रीति ठटी ।
'सूर' सुजल सींचियै कृपानिधि, निज जन चरन तटी ॥

उनकी आशा करता हुआ, बकवास करता हुआ मैं घूमता रहता हूँ। दिन पर दिन शरीर की आयु घट रही है, पल-पल यह कमजोर होता जा रहा है और दुखों के जंजाल में फँसता जा रहा है। चिन्ता के वशीभूत होने के कारण मुझे भूख नहीं लगती और नींद भी आँखों से दूर भाग गयी है। माया के रस में डूबकर मैं लम्पट हो गया हूँ, उसी में मैं दिन-रात डूबा रहता हूँ और समझाने पर भी मुझे ज्ञान नहीं होता। माया में डूबी खोपड़ी के ऊपर नीच नर्तकी मृत्यु नृत्य कर रही है। थोड़े से स्वाद के लिए जैसे बन्दर और कुत्ते मनुष्यों के द्वारा आधीन कर लिए जाते हैं वैसे ही मेरे नीच मन ने तुच्छ विषयों के लोभवश खतरनाक रास्ता पकड़ लिया है। सूरदास जी कहते हैं कि हे कृपानिधि! मुझ अपने निजी जन को अपने चरणकमल रूपी नदी के पवित्र जल से सिंचित कर दीजिये (अपने चरणारविन्दों की शरण में लेकर, अपनी भक्ति प्रदानकर पावन बना लीजिये)।

जगत में जीवत ही कौ नातौ

जगत में जीवत ही कौ नातौ ।
मन बिछुरैं तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ ॥
मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहातौ ।
बिषयासक्त रहत निसि-बासर, सुख सियरौ, दुख तातौ ॥
साँच-झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखौ खातौ ।
'सूरदास' कछु थिर न रहैगौ, जो आयौ सो जातौ ॥

संसार में सभी संबंधों का निर्वाह केवल जीवित रहने तक ही होता है। (मृत्यु के बाद) मन के अलग होते ही दाह- क्रिया के बाद शरीर जलकर राख हो जाएगा तब जीव की कुशलता पूछने कोई नहीं आएगा। इसलिये मैं-मेरा से सम्बन्धित अभिमान कभी नहीं करना चाहिए। महापुरुषों द्वारा निर्देशित कार्य को करना चाहिये जिससे सभी का मंगल हो। भोगी मनुष्य दिन-रात संसारी विषयों में आसक्त रहता है, उसे सुख अनुकूल मालूम पड़ता है और दुःख प्रतिकूल प्रतीत होता है। ऐसा कृपण व्यक्ति झूठ-सच बोलकर बहुत सा धन संग्रह कर लेता है किन्तु भोजन अत्यंत रूखा-सूखा करता है। सूरदास जी कहते हैं कि इस नश्वर जगत में कुछ भी स्थिर नहीं है; जिसका जन्म हुआ है, एक दिन अवश्य उसकी मृत्यु होगी।

रे मन छाँड़ि विषय कौ रँचिबौ

अरे मन! विषय-भोगों की आसक्ति करना छोड़ दे। तू सेमर के फल से रसास्वाद की आशा करने वाले तोते के समान जगत के झूठे विषयों से तृप्त होने की आशा क्यों करता है? (विषय

भोगियों को कपट के मार्ग पर चलना पड़ता है, यदि तू कपट करता है तो) अन्त में कपट धर्म का आश्रय लेने से तेरी रक्षा नहीं होगी। हृदय में तूने कामिनी-कंचन को बसा रखा है, इसके कारण तुझे कष्ट उठाना होगा। अरे पागल, अभिमान का त्याग करके, राम का नाम ले नहीं तो नरक की भीषण ज्वाला में तुझे जलना पड़ेगा। यही बात तुझसे सद्गुरु ने कही थी और उसी बात को मैं तुझसे कहता हूँ कि राम नाम रूपी रत्न, अमूल्य धन का संग्रह करते रहना। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् का स्मरण किये बिना तो योगी (साधु) बनने पर भी तुझे मदारी के बन्दर की तरह माया के आधीन होकर नाचना पड़ेगा।

रे मन, छाँड़ि विषय कौ रँचिबौ ।
कत तूँ सुवा हो सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिबौ ॥
अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगौ पचिबौ ।
तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबौ ।
सतगुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-रतन-धन सँचिबौ ।
'सूरदास' प्रभु हरि-सुमिरन बिनु जोगी कपि ज्यौं नचिबौ ॥

कहत हैं आगैं जपिहैं राम

संसारी लोग ऐसा कहते हैं कि भविष्य में (बुढ़ापे में या अनुकूल परिस्थिति आने पर) राम का भजन करेंगे लेकिन बीच में ही (युवावस्था में या वर्तमान परिस्थिति में) यदि काल आ धमका (मृत्यु हो गयी) तब क्या करोगे? माँ के गर्भ में तुझे दस महीने तक सिर नीचा किये उल्टे लटके रहना पड़ा, वहाँ तुझे तनिक भी विश्राम नहीं मिला। जन्म लेने पर तेरी बाल्यावस्था तो खेलने में बीत गयी और युवावस्था धन-संग्रह में व्यतीत हो गयी। अब तो वृद्धावस्था निकट आ गयी है और तूने अभी तक अपने कल्याण हेतु कोई काम नहीं किया। सूरदास जी कहते हैं कि बिना हरिनाम लिए तूने भगवान् को भुला दिया (इस प्रकार सारा मनुष्य जन्म ही तूने व्यर्थ गँवा दिया)।

कहत हैं आगैं जपिहैं राम ।
बीचहिं भई और की औरे, पर्‍यो काल सौं काम ॥
गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयौ बिस्राम ।
बालापन खेलतहीं खोयो, जोबन जोरत दाम ॥
अब तौ जरा निपट नियरानी, कर्‍यौ न कछुवै काम ।
'सूरदास' प्रभु कौं बिसरायौ, बिना लिऐं हरि नाम ॥

हमारे निर्धन के धन राम

हम जैसे निर्धनों का धन राम का नाम है। इसे चोर कभी चुरा नहीं सकता, कभी यह घटता नहीं है और आपत्ति काल में यह अत्यंत सहायक सिद्ध होता है। यह श्री हरि का नाम ऐसा है जो कभी जल में नहीं डूब सकता और न ही अग्नि कभी इसे जला सकती है। भगवान् वैकुण्ठनाथ समस्त सुखों के दाता हैं। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे लिए तो वे साक्षात् सुख के धाम हैं।

हमारे निर्धन के धन राम ।
चोर न लेत घटत नहिं कबहूँ, आबत गाढ़ैं काम ॥
जल नहिं बूड़त अगिनि न दाहत, है ऐसो हरि-नाम ।
बैकुँठनाथ सकल सुख दाता, 'सूरदास' सुख-धाम ॥

भजन बिनु कूकर सूकर जैसो

भगवान् के भजन के बिना मनुष्य केवल कुत्ते और सूअर के समान है। जैसे जिस घर में बिल्ली रहती है उस घर के चूहों पर सदा मृत्यु का भय बना रहता है। वैसे ही संसार के तुच्छ विषयों में आसक्त मनुष्य के सिर पर भी हर समय काल का पहरा रहता है। जैसे नीच पक्षी बगुला-बगुली और गीध-गीधनी का जीवन व्यर्थ है उसी प्रकार भोगी मनुष्य का संसार में जन्म लेना निन्दनीय है। पशु-पक्षियों के भी रहने का निवास स्थान (घर), पुत्र, स्त्री आदि होते हैं तो उनमें और विषयी मनुष्यों में क्या अन्तर है? माँसाहारी जीव भी दूसरे प्राणियों को मारकर अपना पेट भर लेते हैं, शिश्नोदर परायण मनुष्य भी इन्हीं जीवों के समान हैं। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् के भजन बिना मनुष्य केवल ऊँट, बैल और भैंसे के समान है।

भजन बिनु कूकर-सूकर-जैसो ।
जैसैं घर बिलाव के मूसा, रहत विषय-बस वैसौ ।
बग-बगुली अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियौ तैसौ ।
उनहूं कैं गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ ।
जीव मारि कै उदर भरत हैं, तिन कौ लेखौ ऐसौ ।
'सूरदास' भगवंत-भजन बिनु, मनौ ऊँट-वृष-भैंसौ ॥

जसोदा हरि पालने झुलावै

यशोदा जी बाल-गोपाल को पालने में झुला रही हैं। प्रेम से उन्हें सहलाती हैं, अनेक प्रकार के लाड़ लड़ाती हैं और जिस तरह से कन्हैया प्रसन्न हो, उस तरह से गीत गाती हैं। मैया कहती हैं - हे निद्रा देवी ! शीघ्र ही मेरे लाला के पास आ जा, तू आकर मेरे कान्हा को सुलाती क्यों नहीं है? मेरा कान्हा तुझे बुला रहा है, तू शीघ्र ही क्यों नहीं आती है? मैया का इस प्रकार का प्रेम-गीत सुनकर श्री हरि कभी आँखें मूँद लेते हैं और सोये हुए के समान होठ फड़काते हैं। मैया लाला को सोया हुआ जानकर मौन हो जाती है और दूसरों से संकेत के माध्यम से ही बोलती है। मैया को मौन देखकर कन्हैया फिर से व्याकुल होकर जाग जाते हैं और यशोदा जी पुनः प्रभु को सुलाने के लिये मधुर गीत गाने लगती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि जो परमानन्द अमर ऋषि-मुनियों को भी दुर्लभ है उसे नन्द पत्नी यशोदा जी ने सहज में ही पा लिया है।

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै ॥
मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुआवै ।
तू काहे न बेगि-सी आवै तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहूँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहूँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन है है रही कर कर सैन बतावै ॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नँद भामिनि पावै ॥

नागरीदास जी

प्यारी तेरो भलो बनो बरसानो

हे प्यारी जू ! (लाड़िली जी) आपका बरसाना अत्यन्त ही मनोहर (मनोरम) धाम है। यहाँ पर स्नान करने के लिए अत्यन्त दिव्य सरोवर पीरी पोखर, प्रेम सरोवर और भानोखर आदि हैं। गहवर वन और साँकरी खोर यहाँ की प्रसिद्ध नित्य लीला स्थलियाँ हैं, जो रसिक संतो को अत्याधिक प्रिय है। नागरीदास जी कहते हैं कि बरसाना धाम का दिव्य वास वृषभानु सुता श्रीराधारानी की कृपा से ही प्राप्त होता है।

प्यारी तेरो भलो बनो बरसानो ।
पीरी पोखर प्रेम सरोवर भानोखर को न्हानो ।
गहवर वन और खोर सांकरी संतन को मनमानो ।
'नागरिदास' वास बरसानो भानोमति जगजानो ॥

तलहटी बरसाने की रहिये

हे मनुष्यों ! बरसाने की मनोरम तलहटी में रहो। बरसाना वास करते समय प्रतिदिन बड़े आनन्द के साथ वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी का गुण गाओ। बरसाने के प्रसिद्ध सरोवरों (पीली पोखर, प्रेम सरोवर और भानोखर 'वृषभानु कुण्ड' आदि) में श्रद्धा के साथ स्नान करो। साँकरीखोर का दर्शन करो और उसके भीतरी रास्ते से चलते हुए राधा सरोवर पर आ जाओ। ब्रह्माचल पर्वत पर स्थित मोरकुटी, दानगढ़, मानगढ़ और विलासगढ़ का दर्शन कर परमानन्द लाभ प्राप्त करो। श्री राधारानी निर्मित गहवर वन की दिव्य लताओं में बैठकर राधा नाम का गान करो। नित्य नवायमान दिव्य लीला स्थल ब्रह्माचल पर्वत के

तलहटी बरसाने की रहिये ।
नित प्रति श्री वृषभान सुता के हुलस-हुलस गुण गईये ।
पीरी पोखर प्रेम सरोवर भानोखर में नहईये ।
खोर सांकरी के भीतर चल, राधा सरोवर अईये ।
मोर कुटी और दान मान गढ़, गढ़ विलास सुख पईये ।
गहवर वन की बैठ लतन में, राधा-राधा गईये ।
सदा सरवदा पर्वत ऊपर नित प्रति चढ़ कर जईये ।
'नागरिदास' वास बरसानो कुँवरि दिये सों पईये॥

ऊपर नित्य प्रति जाना चाहिए। नागरीदास जी कहते है कि कुँवरि लाड़िली जी की कृपा से ही बरसाना धाम का वास प्राप्त होता है।

मलूकदास जी

गरब न कीजै बावरे हरि गरब प्रहारी

अरे पागल मनुष्य ! गर्व मत करना क्योंकि श्रीहरि गर्व को नष्ट करने वाले हैं। गर्व के कारण ही रावण का विनाश हुआ और उसने दारुण दुःख सहा। द्वेष और अभिमान श्रीरघुनाथ जी के मन को बिल्कुल भी नहीं सुहाते हैं। जिसके हृदय में अभिमान है, उसकी वह छाती फाड़ डालते हैं (पूर्ण रूपेण उसका विनाश कर देते हैं और जन्म-जन्मान्तरों तक उसे आसुरी योनि में फेंक देते हैं)। हे बन्धु ! अपने हृदय में (प्रभु को प्रिय लगने वाले गुणों) दया और दैन्य भाव को सदा धारण किये रहो। भगवान् के प्रेमी संतों के चरणों का आश्रय ग्रहण करो, उनके चरणों में मस्तक नवाओ, इससे प्रभु प्रसन्न होंगे। संत मलूकदास जी कहते हैं कि सर्वाधिक कल्याणकारी उपदेश यही है कि कभी भी किसी जीव से द्रोह मत करो तथा श्रीहरि का अनन्य स्मरण करके इस अपार भव सागर को सहज ही पार कर लो।

गरब न कीजै बावरे, हरि गरब प्रहारी ।
गरबहिं ते रावण गया, पाया दुख भारी ॥
जरन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सुहाती ।
जाके हिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती ॥
एक दया और दीनता, ले रहिये भाई ।
चरन गहौ जाय साधु के, रीझै रघुराई ॥
यही बड़ा उपदेश है, पर द्रोह न करिये ।
कहे 'मलूक' हरि सुमिरि के, भव सागर तरिये ॥

श्री बाबा महाराज के शब्दों में - "गर्व (अभिमान) करोगे तो भगवान् प्रहार करेंगे, मारेंगे, गर्व को नष्ट करेंगे; इसलिए क्यों उनका प्रहार खाने जाते हो? जरा भी गर्व करोगे तो असुर बन जाओगे। रावण ने काल को जीतकर पाटी में बाँध लिया था। मौत को भी जीत लोगे लेकिन गर्व करोगे तो मारे जाओगे। रावण ने ७१ चौकड़ी राज्य किया था, उसी (रावण) के सामने बेटे-नाती आदि बीसों पीढ़ियाँ सब नष्ट हो गईं, सब मर गये ऐसा दुःख मिला।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
(गीता १६/१८, १९)

छोटे बनो, गर्व की वाणी नहीं बोलो तो भगवान् के प्यारे बन जाओगे। गर्व की वाणी बोलना बड़ा अपराध है।

दीनबन्धु दीनानाथ, मेरी ओर हेरिये

दीनबन्धु दीनानाथ, मेरी ओर हेरिये ।
भाई नाहिं, बन्धु नाहिं, कुटुम-परिवार नाहिं ।
ऐसा कोई मित्र नाहिं, जाके ढिंग जाइये ॥
सोने की सलैया नाहिं, रूपे का रुपैया नाहिं ।
कौड़ी-पैसा गाँठ नाहिं, जासे कछु लीजिये ॥
खेती नाहिं, बारी नाहिं, बनिज-ब्योपार नाहिं ।
ऐसा कोई साहू नाहिं, जासों कछू माँगिये ॥
कहत 'मलूकदास' छोड़ि दे पराई आस ।
रामधनी पाइकै अब काकी सरन जाइये ॥

हे दीनहीनों के एकमात्र बन्धु, हे अनाथों के नाथ ! आप कृपा करके मेरी ओर दृष्टि डालिए, इस संसार में मेरा कोई भाई नहीं है, कोई मेरा सगा सम्बन्धी नहीं है, कोई मेरा परिवार नहीं है (सभी स्वार्थी और मरणधर्मा हैं) ऐसा मेरा कोई हितैषी मित्र नहीं है, जिसके पास जाकर मैं प्रेम सम्बन्ध जोड़ूँ। न तो मेरे पास सोना-चाँदी है और न ही रूपया-पैसा है, एक फूटी कौड़ी भी मेरे पास नहीं है जिससे कोई सामग्री खरीदी जा सके। जीविका के लिए मेरे पास न तो खेती का साधन है और न ही मेरा कोई व्यापार या व्यवसाय है। ऐसा कोई सेठ-साहूकार नहीं है मेरे परिचय का, जिसके पास मदद माँगने जाऊँ। मलूकदास जी कहते हैं कि ये सब तो पराई नाशवान वस्तुएँ हैं, इनका आश्रय छोड़ दे, कभी भी इनका सहारा मत लेना, भगवान् ही एकमात्र धनी हैं (बाकी सब कंगले हैं), ऐसे धनी श्रीराम को छोड़कर संसार के इन दरिद्रों की शरण में जाने की क्या आवश्यकता है?

कृष्णदास जी

ब्रज में रतन राधिका गोरी

इस ब्रज की सर्वाधिक बहुमूल्य रत्न हैं गौरांगी श्रीराधारानी । इस अमूल्य रत्न का चोरजारशिखामणि नन्दनन्दन ने महाराज वृषभानु जी के राजमहल से हरण कर लिया (ऐसी चोरी करी कि कोई जान नहीं पाया) । श्रीजी के काले-काले चिकने सुन्दर केशपाश लाल रंग के फीते में बेला के श्वेत पुष्पों से गुथे हुए अद्भुत अवर्णनीय सौन्दर्य से शोभायमान हो रहे हैं । श्यामा जू ने प्रियतम श्यामसुन्दर के स्कंध पर अपनी भुजाओं को इस प्रकार रखा है मानो श्याम मेघ और दामिनी की जोड़ी हो । कालिन्दी तट स्थित वन वीथियों की सघन कुंजों से उनकी सरस केलि का कोलाहल सुनाई पड़ रहा है । कृष्णदास जी कहते हैं कि ऐसे स्वामी गिरधर नागर और नागरी नवल किशोरी ही मेरे जीवन सर्वस्व हैं ।

ब्रज में रतन राधिका गोरी ।
हर लीन्ही वृषभानु भवन तें, नन्द सुवन की चोरी ॥
गुँथी लर केस हेत कुसुमावलि, अरु सुरंग कच डोरी ।
पिय भुज कंध धरें सोभित मनु, घन दामिनि दुति जोरी ॥
कालिन्दी तट केलि कुलाहल, सघन कुंज वन खोरी ।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर नागर, नागरि नवल किशोरी ॥

श्री बाबा महाराज के शब्दों में – "ब्रज मण्डल में श्रीराधा अद्भुत रत्न हैं, श्रीजी को 'ब्रजनागरीणाम चूड़ामणि' एक अद्भुत रत्न कहा गया है । राधा गोरी ब्रज में एक ऐसा रत्न है जिसके लिए भगवान् पूर्णतम पुरुषोत्तम अनन्त सर्वशक्तिमान भी लीला दृष्टि से चोरी करने लग गये । इस ब्रज मण्डल का रत्न हैं – राधा ! .... इस ब्रज मण्डल की मणि हैं – राधा !! .... इस ब्रज मण्डल की शोभा हैं – राधा !!! ....इस ब्रज मण्डल की प्राण हैं – राधा !!!! .... इस ब्रज मण्डल की आत्मा हैं – राधा !!! .... इस ब्रज मण्डल का सौन्दर्यामृत हैं – राधा !!!! ..... इस ब्रज मण्डल का लावण्यामृत हैं – राधा !!!!! ..... इस ब्रज मण्डल का कारुण्यामृत हैं – राधा !!!!!! .... श्यामसुन्दर ने उस रत्न को चुरा लिया । चोरी क्यों किया? जो चीज कठिनाई से मिलती है उसी में रस आता है; ये एक प्रेम की विधा (शैली) है । उस रत्न के लिए श्यामसुन्दर चोर बने । उस रत्न का महत्त्व सामने आया कि जिसके लिए भगवान् भी चोर बना, वो कैसा रत्न होगा ! ... वो राधा

गोरी कैसी होगी !! .... वृषभानु भवन, बरसाने में वो रत्न प्रगट हुआ और वहाँ से श्यामसुन्दर ने चोरी किया।

इसी गहवर वन में श्यामसुन्दर आते हैं, श्री जी उनके कंधे पर गलबैयाँ देकर के विहरती हैं, उस समय अलौकिक शोभा होती है, ऐसा लगता है मानो श्याम रूपी बादल के बीच में दामिनी रूपी राधा चमक रही हैं। कभी-कभी इन वन की निकुंजों से निकल के श्रीराधारानी सुन्दर-स्वच्छ नील जल से प्रवाहित यमुना जी के किनारे कदम्ब वनों में विहार करती हैं।"

धम्मिल्लं ते नवपरिमलैरुल्लसत्फुल्लमल्लीमालंभालस्थलमपि लसत्सान्द्रसिन्दूरबिन्दु ।
दीर्घापाङ्गच्छविमनुपमां चारु चन्द्रांशु हासं प्रेमोल्लासं तव तु कुचयोर्द्वन्द्वमन्तः स्मरामि ॥

(श्रीराधासुधानिधि -६६)

कुम्भनदास जी

भगत को कहा सीकरी काम

सदा श्रीनाथ जी की अपरोक्षानुभूति होती थी दोनों महापुरुषों को। संवत् १५२५ वि. में कार्तिक, कृष्णपक्ष एकादशी के दिन गौरवा क्षत्रिय परिवार में परम भागवत श्री कुम्भनदास जी महाराज का जन्म हुआ। कृषि आपकी पैतृक वृत्ति एवं भगवद्भक्ति अक्षुण्ण संपत्ति थी।

वि.सं. १५५० के लगभग महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का ब्रजयात्रा करते हुए जब श्री गिरिराज जी में आगमन हुआ तब आचार्य पाद के द्वारा श्री गोवर्धन नाथ की प्रतिष्ठा हुई और उसी समय कुम्भनदास जी ने उनसे शिष्यत्व स्वीकार किया। कुम्भनदास जी को संगीत-विषारद देखकर आचार्य पाद ने इन्हें श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा सौंप दी। इस तरह से सूरदास जी के भी पूर्व आप यह सेवा बड़ी निष्ठा से करने लगे। बाद में श्री विट्ठलेश जी द्वारा अष्टछाप की स्थापना पर वि.स.१६०२ में आपकी गणना अष्टछाप में हो गई।

नित्य, नवीन पद रचना करके श्रीनाथ जी को सुनाते थे। बहुत जल्दी सर्वत्र आपके गान की प्रसिद्धि हो गई। एक बार अकबर बादशाह ने कुम्भनदास जी का गान सुनने के लिए उन्हें अपने दरबार में बुलाया। विशेष आग्रह पर अपने सहज श्रृंगार में चल दिये कुम्भनदास जी, सिर पर कई टूक की टेढ़ी पाग, बरसों पुराना अंगरखा, जीर्णशीर्ण धोती, हाथ में टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी, पाँव में घिसी हुई पन्हैया।

बादशाह ने बड़ी आवभगत की कुम्भनदास जी की किन्तु यह राजशाही ठाट, नरकतुल्य लग रहा था उन्हें। बादशाह ने पद गायन के लिए प्रार्थना की। कुम्भनदास जी ने देखा, अरे ! इस समय तो मैं गोवर्धन नाथ को पद सुनाता, सारी भड़ास कुम्भनदास जी की पद के द्वारा मुख से विगलित हो गई।

भगत को कहा सीकरी काम ।
आवत जात पन्हैया टूटी बिसर गयो हरि नाम ॥
जाको मुख देखत दुःख उपजत ताको करन परी परनाम ।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर बिनु सब झूठौ धनधाम ॥

स्पष्टवादी कुम्भनदास जी को मान-सम्मान, धन-धान का तो कोई प्रलोभन था नहीं और ना हीं मृत्यु का

कोई भय था, अतः मन में जो आया निर्भीक होकर गा दिया। अनन्तर बादशाह ने शीघ्र ही ससम्मान कुम्भनदास जी को ब्रज भेज दिया क्योंकि वह उनकी मनःस्थिति को समझ गया था।

आनि हरि पाये हो नीके

संवत् १६२० वि. में महाराज मानसिंह ग्राम यमुनावतो में कुम्भनदास जी का दर्शन करने आये, उस समय बालकृष्ण लाल कुम्भनदास जी गोद में विराजे हुए थे। सख्य में पगे दोनों (भगवन+भागवत) वार्तालाप कर रहे थे।

बालकृष्ण – 'कुम्भनदास जी ! आपसे एक बात कहूँ? "

कुम्भन – "कहो भगवन् ! "

(तभी राजा मानसिंह का कुम्भन दास जी की पर्णकुटी में प्रवेश और बालकृष्ण का अन्तर्हित होना।)

विरह वेदना के थपेड़ों से कुम्भनदास के प्राण रुदन करने लगे। मुख पर औदास्य छा गया। प्रसन्नता तो सुदूर खड़ी हो गई; राजा को देखकर मन दुर्भाग्य को गाने लगा –

"कहाँ से आ गया नरेश?

वार्ता पूरी भी न हुई, न जाने क्या कहता सर्वेश .... ! "

नरेश सविनय प्रणाम करके एक ओर आसीन हो गया।

तिलक स्वरूप करने के लिए कुम्भनदास जी ने अपनी भतीजी से आसन और दर्पण माँगा।

भतीजी ने कहा – "पिताजी ! न आसन है, न दर्पण। पड़िया आसन को खा गई, दर्पण को पी गई। अभी दूसरा लाती हूँ।"

नरेश के कुछ समझ में नहीं आया।

आसन कोई भक्ष्य पदार्थ नहीं है और दर्पण कोई पेय पदार्थ नहीं है।

तब तक वह बालिका तृणासन और मृत्तिक निर्मित एक पात्र में पानी भर कर ले आई, तृणासन पर आसीन हो, जल में मुख देखकर श्री कुम्भनदास जी महाराज ने तिलक किया, तब राजा मान सिंह पड़िया के आसन खाने और आरसी पीने का अभिप्राय समझे। श्री कुम्भनदास जी की निर्धनता देखकर राजा ने मणिमण्डित स्वर्णिम दर्पण देने का साहस किया, कुम्भनदास जी ने उसे अस्वीकार कर दिया।

१,००० स्वर्ण मोहर देनी चाही तो उसकी भी उपेक्षा कर दी। चलते-चलते मानसिंह ने यमुनावतो गाँव कुम्भनदास जी के नाम करना चाहा तो कुम्भनदासजी बोले – "ग्रीष्म में टेटी, शीत

में झरबेरिया, ये दोनों हमारे सेठ हैं, इनके सहारे सुखपूर्वक जीवन यापन हो जाता है। कुम्भनदास जी की इस निष्किंचन अपरिग्रह वृत्ति को देखकर राजा मानसिंह विस्मयान्वित हो गये।

महाराज – "मेरे योग्य कोई तो सेवा बता दीजिए", राजा ने एक बार पुनः अनुरोध किया। इस पर कुम्भनदासजी बोले – "कभी मत आना।"

भतीजी बोली – "घर में कुछ नहीं है, राजा की भेंट ले लेना था।"

कुम्भनदास जी बोले – "राँड़, नाथ जी कहा कहेंगे; लेने की बात हाँसी में भी नहीं कहनी चाहिए।"

निःस्पृहता, अपरिग्रह और उत्कट त्याग की पराकाष्ठा पर स्थित कुम्भनदास जी को प्रणाम करके राजा लौट गया।

राजा के जाते ही कुम्भनदास जी पुनः बोले – "नरेश के आने से बाल-कृष्ण अपनी बात भी पूरी नहीं कर पाये। न जाने क्या कहते? "

तब तक बालकृष्ण आकर कुम्भनदास जी के अंक-पर्यंक में बैठ गये।

कुम्भनदास – "जै, जै ! आप उस समय क्या कहना चाह रहे थे? "

कृष्ण – "कहना क्या चाह रहा था, यही कि राजा जो कुछ दे उसे ले लेना, मना मत करना और आपने तो देने की अभिलाषा से यहाँ आने को ही मना कर दिया उसे।"

कुम्भनदास – "जै, जै आप ही बताइये 'विश्वेश का सेवक होकर, नरेश से कुछ लूँ? आप त्रैलोक्याधिपति हैं और वो बराक महीपति .... ।"

श्री कुम्भनदास जी का जीवन-चरित्र अवर्णनीय निरपेक्षता से परिपूरित है, जिससे स्वयं भगवान् भी बार-बार पराभूत हो गये।

यह निरपेक्षता ही थी, जिससे नाथ सदा साथ रहने लगे कुम्भनदास जी के।

नाथ जी – कुम्भनदास दास जी ! चलो आज हमारे साथ पेट पूजा करो।

कुम्भनदास जी – जैसी आज्ञा नाथ।

(दोनों साथ चल दिये)

नाथ जी तो एक सूने सदन में ऐसे प्रवेश कर गये जैसे ग्रह मालिक स्वयं ही हों, कुम्भन जी को भी अनुगमन करना पड़ा।

नाथ जी – "कुम्भनदास जी ! अपनी पीठ पर चढ़ाओ मोकूं।"

कुम्भनदास जी की पीठ पर चढ़कर ऊपर लटका मटका उतारना सहज हो गया।

नाथ जी – "अब विलम्ब न करो जो भाये सो खाओ दूध-दही, माखन-मिश्री।"

शीघ्रता में दोनों कर से उदर भरने का प्रयास था, तब तक पिंगल दुकूल खुल गया, खाने में व्यवधान न हो अतः दो भुजा और प्रकट करना ही ठीक लगा नाथ को। दो भुजाओं से नीचे लटका दुकूल सम्भाला। यह ठीक रहा, न भोजन रुका, न लज्जा गई।

श्री कुम्भनदास जी के भाग्य का कुम्भ भर गया, द्विभुज के चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन हुआ। तब तक ब्रज सुंदरियों ने द्वार पर घेर लिया चोरों को।

कुम्भन जी की आर्त दृष्टि नाथ के मुखमण्डल पर रुक गई, यह कहने को कि करो आप मरैं हम।

नाथ जी – "न - न मरवे को कहा काम? शस्त्र छोड़ो।"

कुम्भन जी – "वह कैसे? "

नाथ जी – "अभी बताऊँ।"

युगल कपोल दूध से गोल किये और द्वार पर खड़ी ब्रज सुन्दरियों के नेत्रों में फूँ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ करके दूध की पिचकारी छोड़ दी।

आनि हरि पाये हो नीके ।
चोरि चोरि दधि माखन खायौ गिरिधर दिन प्रति हीके ।
रोक्यो भवन द्वारि ब्रज सुंदरि ये ठाढ़े पय पीके ।
अब कैसे जैयत अपने घर भाजन फोरि दूध दधि घी के ।
'कुम्भनदास' प्रभु भले परे फंद जान न दैहौं भांवते जीके ।
भरि गंडूष छींट दै नैंननि गिरिधर धाय चले दै कीके ।

वे आँचल लेकर नेत्र पोंछे इतना समय पर्याप्त था दोनों को भागने के लिए, पर आज का यह घटित दृश्य कुम्भनदास जी के नेत्रों के आगे स्थिर ही रहा। चतुर्भुज रूप का चिन्तन करते हुए गाया –

सर्वेश के सर्वान्तरतम-सरस-सख्य के सौख्य में ही सदा सुख मिलता रहा कुम्भनदासजी को।

कितेक दिन है जु गये बिनु देखे

७ पुत्र, ७ पुत्रवधू, १ भतीजी, दम्पत्ति –१७ प्राणी थे घर में। निर्धनता दूर करने की दृष्टि से दयालु श्री गुसाँई जी ने विचार किया, जब ये भगवान् से कुछ नहीं लेते तो फिर गुरु प्रदत्त द्रव्य क्या स्वीकार करेंगे? अतः वि.सं.१६३१ में गुसाँई जी ने कुम्भनदास जी को द्वारिका-यात्रा में चलने को कहा कि वैष्णवों की भेंट से कुछ आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी। कुम्भनदास जी गिरिराज गोवर्धन से आजीवन बाहर नहीं जाना चाहते थे। गुरु अवज्ञा का भय भी था। अतः चल तो दिये किन्तु

अप्सरा कुण्ड तक आते-आते श्रीनाथ जी से वियुक्त होने का ऐसा विरह-ज्वर चढ़ा, हृतल एकदम से कम्पित हो उठा। दर्शनेन्द्रिय उस मृदुल-नील-कलेवर के दर्शन की प्यास से व्यग्र हो उठी।

सावन-भादों की धारा की भाँति नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। पर,

कौन जाने यह अन्तर्व्यथा?

कौन जाने इस प्रेम की गहराई .....?

अभी एक प्रहर ही व्यतीत हुआ था और आपके विरह-व्यथित चित्त ने गाया –

कितेक दिन है जु गये बिनु देखे ।
तरुण किशोर रसिक नन्दनन्दन कछुक उठति मुख रेखें ।
वह चितवनि वह हास मनोहर वह नटवर वपु भेखें ।
वह शोभा वह कान्ति वदन की कोटिक चंद विशेषें ।
श्यामसुन्दर संग मिलि खेलन की आवति जियरा अपेखें ।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखें ।

गुसाँई जी को जब कुम्भनदास जी की यह स्थिति ज्ञात हुई कि बिना श्रीनाथ जी के ये प्राणोत्सर्ग ही कर देंगे तो तत्क्षण नाथ जी की सेवा में लौटने की आज्ञा दी। एक बार गुसाँई जी गोकुल गये हुए थे, उस दिन गुसाँई जी का जन्म दिवस था। नाथ जी बोले – "आज जलेबी बननी चाहिए।" अब तो वैष्णवों ने जन्मोत्सव मनाने हेतु द्रव्य एकत्रित किया। किसी ने १ रुपया दिया, किसी ने दो, कुम्भनदास जी अपने २ पड्डा, २ पड़िया बेच करके ५ रूपये लाये। जलेबियाँ बनी, मन्दिर सज्जित किया, सोल्लास वैष्णवों ने राजभोग में जलेबियों का नाथ जी को भोग लगाया। कुम्भनदास जी ने बधाई का पद गाया।

श्री गुसाँई जी ने पूछा – "आज कौन सा उत्सव है? "

सेवकों ने कहा – "महाराज ! .... आपका जन्मदिवस है।"

"जलेबी किसने बनवाई?" गुसाँई जी के इस प्रकार पूछने पर सद्दू पाण्डेय ने कहा – "जै जै ! इसमें सभी वैष्णवों का योगदान है।

सबने एक-एक, दो-दो रूपये दिए, इस प्रकार २१ रुपये एकत्रित हुए। उन २१ में ५ रुपये तो कुम्भनदास जी ने दिये।"

गुसाँई जी ने चकित होकर पूछा – "कुम्भना ! तुम्हारे पास ५ रूपये कहाँ से आये? "

गुसाँई जी के इस प्रकार पूछने पर कुम्भनदास जी कुछ नहीं बोले। रामदास जी ने बताया – "जै जै कुम्भनदास जी अपने पड्डा, पड़िया बेचकर ५ रूपये लाये", तब कुम्भनदास जी दैन्य से बोले, "अपना शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचिके यदि आपके अर्थ लगे तो वैष्णवधर्म सिद्ध होय हम

ऐसे कहाँ है"? यह सुनकर गुसाँई जी की हृदय भावोर्मियाँ तरंगायित हो उठीं। अष्टछाप के सुकवियों में आपकी सर्वप्रथम नियुक्ति हुई और दीर्घकाल तक नाथ जी की सेवा पूर्ण निष्ठा से की।

११५ वर्ष की दीर्घायु पूर्ण करके सं.१६४० वि. के समकालीन, परम पावन संकर्षण कुण्ड पर जब आप ऐहिक लीला का संवरण करने लगे तो उस समय श्री गुसाँई जी ने पूछा – "कुम्भनदास जी ! इस समय आपका मन किस लीला चिन्तन में है? "

तब कुम्भनदास जी ने नन्दतनय और उनकी नित्य संगिनी भानु तनया की रूप माधुरी का दिग्दर्शन कराने वाले इस पद का गायन किया –

"रसिकनी रस में रहत गड़ी"

वास्तव में श्री कुम्भनदास जी त्याग एवं निरपेक्षता के आदर्श, परम भागवत और भगवद् प्रपन्न सद्गृहस्थ थे।

परमानन्ददास जी

माई री ! मेरो माधव सौं मन मान्यौं

आश्चर्य में भरी हुई गोपांगनायें कहती हैं - अरी सखी, मेरा मन तो माधव में अनुरक्त हो गया है। मैंने अपने मन को कमलनयन के मन में तदाकार कर दिया है। मैंने लोक वेद की लज्जा का त्याग कर दिया है। जाति के गौरव व मर्यादा को भी मैंने पूर्ण रूपेण तिलाञ्जलि दे दी है। एक गोविन्द के प्रेम के कारण मैंने सभी से बैर ठान लिया है। हे सखी ! जैसे दूध और पानी एक साथ घुलने के बाद अलग नहीं हो सकते, उसी प्रकार कृष्ण में लीन हुआ मेरा मन अब कैसे पृथक हो सकता है? परमानन्ददास जी के अनुसार अनुरागवती गोपिकायें कहती हैं – मैं (शीघ्र ही) मोहन से जाकर मिलूँगी, मेरी और उनकी प्रीति आज की नहीं, अनादिकाल की है।

माई री ! मेरो माधव सौं मन मान्यौं ।
अपनौ मन अरु कमल नयन कौ एक ठौर करि सान्यौ ॥
लोक वेद की लाज तजी मैं, न्यौंति आपनें आन्यौं ।
एक गोविंदचंद के कारन बैरु सबनि सौं ठान्यौं ॥
अब क्यों भिन्न होहि मेरी सजनी! दूध मिल्यौ जैसे पान्यौं ।
'परमानन्द' मिलि हों मोहन कों है पहिलौ पहिचान्यौं ॥

चतुर्भुजदास जी

श्रीगोवर्द्धन वासी सांवरे लाल

एक समय गुसाँई जी महाराज अपने खवासों के साथ किसी कार्य से ब्रजबाह्य जा रहे थे। चतुर्भुजदास जी को भी साथ चलने को कहा। वे चल तो दिए, परन्तु ब्रज के बाहर होते ही आपका चित्त विरह-विदग्ध हो गया, वाणी के कंठ ने गान आरम्भ किया –

श्रीगोवर्द्धन वासी सांवरे लाल तुम-बिन रह्यौ न जाय हो ।
ब्रजराज लडैते लाडिले ।
बंक चितै मुसकाय कें लाल सुन्दर बदन दिखाय ।
लोचन तलफै मीन ज्यों लाल पल छिन कल्प विहाय ॥
सप्तक स्वर बंधान सों लाल मोहन वेणु बजाय ।
सुरत सुहाई बांधिके नेंक मधुरे-मधुरे गाय ॥
रसिक रसीली बोलनी लाल गिरि चढ़ गैयां बुलाय ।
गांग बुलाई धूमरी नेंक ऊँची टेर सुनाय ॥
दृष्टि परे जा दिवस ते लाल तब ते रुचे न आन हो ।
रजनी नींद न आवही मोहि बिसरो भोजन पान हो ॥
दरसन कों नैना तपै लाल वचन सुनन को कान हो ।
मिलवे को हियरा तपै मेरे जिय के जीवन-प्रान हो ॥
पूरण राशि मुख देख के लाल चित चोरयो वाही ओर ।
रूप सुधारस पान के लाल सादर कुमुद चकोर ॥
मन अभिलाषा है रही लाल लगत न नैन-निमेष हो ।
एक टक देखे भावते प्यारो नागर नटवर वेष हो ॥
लोक-लाज कुल बेद की लाल, छांडे सकल बिबेक हो ।
कमल कली रवि ज्यों बढ़ै लाल छिन-छिन प्रीति विशेष हो ॥
कोटिक मन्मथ वारने लाल देखत डगमगी चाल ।
युवती जनमन फंदना लाल अम्बुज नयन विशाल ॥
कुंज भवन क्रीड़ा करो लाल सुख निधि मदन गोपाल ।
हम श्री वृन्दावन मालती तुम भोगी भ्रमर भुवाल ॥

यह रट लागी लाड़ले लाल जैसे चातक मोर ।
प्रेमनीर वरषा करो लाल नवघन नंद किशोर ॥
युग-युग अविचल राखिये लाल यह सुख शैल-निवास हो ।
श्रीगोवर्द्धनधर रूप पै बलि जाय 'चतुर्भुजदास' हो ॥

तब नाथजी ने वहीं अपना साक्षात्कार कराया। साथ ही यह भी कहा – "**एक वर्ष तक जो नित्य इस पद का गान करेंगे, उन्हें निःसंदेह मेरा दर्शन प्राप्त होगा**।"

दादू दयाल जी

जाग रे सब रैन बिहानी

हे मानव ! तुम जागो, मोह की रात्रि अब बीत गई है, जैसे अंजलि में लिए गये जल की बूँदें तत्काल ही टप-टप करके नीचे गिर पड़ती हैं, वैसे ही तुम्हारे दुर्लभ मनुष्य जन्म का एक-एक क्षण बीता जा रहा है। घड़ी के घण्टे से आवाज आती है कि जो दिन बीत गया वह दुबारा नहीं आने वाला। ध्यान से सुनो – सूरज और चाँद बार-बार यही समझा रहे हैं कि हे मनुष्य ! तेरी आयु दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है (तुम मृत्यु की ओर बढ़ रहे हो, अब होश में आ जाओ) सरोवर का जल और वृक्ष की छाया भी यही कह रहे हैं कि हे जीव, तेरी काया को काल रूपी अजगर निगल रहा है (किन्तु प्रमादवश तुझे यह पता नहीं है, तू माया-मोह के नशे में बेसुध हो चुका है।) दादू जी कहते हैं कि प्राण रूपी हंस राहगीर हैं, वे तेरे शरीर को छोड़ने वाले हैं लेकिन तूने अब तक आत्माराम भगवान् को जानने या पाने की कोशिश नहीं की (मरते दम तक तू अपने आत्मा भगवान् को, जो सदा सर्वदा तेरे साथ तेरे हृदय में ही रहे, उन्हें कभी जान नहीं पाया)।

जाग रे सब रैन बिहानी । जाइ जनम अँजुली को पानी ॥
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै । जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै ॥
सूरज-चंद कहैं समुझाइ । दिन-दिन आब घटती जाइ ॥
सरवर-पानी तरवर-छाया । निसदिन काल गरासै काया ॥
हंस बटाऊ प्राण पयाना । 'दादू' आतम राम न जाना ॥

श्री बाबा महाराज के शब्दों में – "अनादिकाल से सबसे पहले वैदिक सभ्यता में यही उद्घोष किया गया कि हे मानवो ! तुम जागो, "उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" तुम मनुष्य बने हो, श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर के बोध (ज्ञान) प्राप्त करो और इस अविद्या के अन्धकार से उस पार चलो, जहाँ अनन्त ज्योति, अनन्त आनन्द, अनन्त सुख है। अविनाशी पद को प्राप्त करो। तुम यहाँ पर क्यों मरण धर्मा बन रहे हो? क्यों अनन्त कष्ट भोगते हो? ये मोह की रात बीत गयी है, अब जागो। जो अनादिकाल से ऋषियों ने कहा, वही महापुरुषों ने कहा है।"

बाबा महाराज जी

राधे किशोरी दया करो

हे किशोरी राधारानी ! आप मेरे ऊपर दया करिये। इस जगत में मुझसे अधिक दीन-हीन कोई नहीं है अतः आप अपने सहज करुण स्वभाव से मेरे ऊपर भी तनिक दया दृष्टि कीजिये। मेरे मन में यह सच्चा विश्वास है कि श्यामा जू सदा से दीनों पर दया करती आई हैं। मैं अनादिकाल से माया के विषम विष रूपी विषयों की ज्वालाओं से उत्पन्न अनेक प्रकार के तापों की आग में जलता आया हूँ। इस जगत में आपका अवतार दीनों के कल्याण के लिए हुआ है। हे दीनों का पालन करने वाली श्री राधे! कृपा करके आप मेरे हृदय में निवास कीजिये। मैं आपका दास होकर भी संसार के विषयों और विषयी प्राणियों से सुख पाने की आशा किया करता हूँ। आप मेरी इस विमुखता के क्लेश का हरण कर लीजिए। हे श्यामा जू! जीवन में कभी तो ऐसा अवसर आएगा जब आप मेरे ऊपर करुणा करेंगीं, इसी आशा के बल पर मैंने आपके द्वार पर डेरा जमा लिया है।

राधे किशोरी दया करो ।
हम से दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और (विषय) की, हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

श्री कुम्भनदास जी की निरपेक्षता

श्री कुम्भनदास जी का जीवन-चरित्र अवर्णनीय निरपेक्षता से परिपूरित है, जिससे स्वयं भगवान् भी बार बार पराभूत हो गये।

यह निरपेक्षता ही थी, जिससे नाथ सदा साथ रहने लगे कुम्भनदास जी के।

नाथ जी – "कुम्भनदास दास जी ! चलो आज हमारे साथ पेट पूजा करो ।"

कुम्भनदास जी – "जैसी आज्ञा नाथ ।"

(दोनों साथ चल दिये)

नाथ जी तो एक सूने सदन में ऐसे प्रवेश कर गये जैसे ग्रह मालिक स्वयं ही हों, कुम्भन जी को भी अनुगमन करना पड़ा ।

नाथ जी – "कुम्भनदास जी ! अपनी पीठ पर चढ़ाओ मोकूं ।"

कुम्भनदास जी की पीठ पर चढ़कर ऊपर लटका मटका उतारना सहज हो गया ।

नाथ जी – "अब विलम्ब न करो जो भाये सो खाओ दूध-दही, माखन-मिश्री "।

शीघ्रता में दोनों कर से उदर भरने का प्रयास था, तब तक पिंगल दुकूल खुल गया, खाने में व्यवधान न हो अतः दो भुजा और प्रकट करना ही ठीक लगा नाथ को । दो भुजाओं से नीचे लटका दुकूल सम्भाला । यह ठीक रहा, न भोजन रुका, न लज्जा गई ।

श्री कुम्भनदास जी के भाग्य का कुम्भ भर गया, द्विभुज के चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन हुआ । तब तक ब्रज सुंदरियों ने द्वार पर घेर लिया चोरों को ।

कुम्भन जी की आर्त दृष्टि नाथ के मुखमण्डल पर रुक गई, यह कहने को कि करो आप मरैं हम ।

नाथ जी – "न - न मरवे को कहा काम? शस्त्र छोड़ो ।"

कुम्भन जी – "वह कैसे? "

नाथ जी – "अभी बताऊँ ।"

युगल कपोल दूध से गोल किये और द्वार पर खड़ी ब्रज सुन्दरियों के नेत्रों में फूँ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ करके दूध की पिचकारी छोड़ दी ।

वे आँचल लेकर नेत्र पोंछे इतना समय पर्याप्त था दोनों को भागने के लिए, पर आज का यह घटित दृश्य कुम्भनदास जी के नेत्रों के आगे स्थिर ही रहा । चतुर्भुज रूप का चिन्तन करते हुए गाया –

आनि हरि पाये हो नीके ।
चोरि चोरि दधि माखन खायौ गिरिधर दिन प्रति हीके ॥
रोक्यो भवन द्वारि ब्रज सुंदरि ये ठाढ़े पय पीके ।
अब कैसे जैयत अपने घर भाजन फोरि दूध दधि घी के ॥
'कुम्भनदास' प्रभु भले परे फंद जान न देहौं भांवते जी के ।
भरि गंडूष छींट दै नैंननि गिरिधर धाय चले दै कीके ॥